संत रज्जब

राधास्वामी सत्संग ब्यास

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 7
एक परिचय 9

1. जीवन में एक निर्णायक मोड़ 15
2. साँईं सबका एक है 24
3. गुरु से मिलाप 30
4. अंतर की साधना 40
5. चाल मन की, पसारा काल का 56
6. कर्म: बंधन संसार का 68
7. प्रेम: सच्ची इबादत 73
8. शरण 79
9. सेवा करे सो बंदगी 86
10. रहनी कैसी हो? 93
11. अंतिम समय 99

वाणी

देह दया का मूल 105
एक न पावै एक बिन, तू ह्वै रह्या अनेक 112
सद्गुरु बिना जीव होये ना पारा 117
साधु समागम घड़ी 131

तन मन में मारग मिल्या 134
मन अमली इस मांड का 149
जम जालिम का बाण 157
सिरजनहार करै त्यों होय 158
तन धोया फिर तीरथों, मैल रह्या मन मांहिं 160
दिल दीये दिल पाइये 163
शरणा सांई साधु का 169
बाहर बैठे बहिर्मुख, गुरुमुख भीतर जाय 172
साहिब सों यहु बीनती 176

संदर्भ सूची 181
संदर्भ ग्रंथ 195
परमार्थ संबंधी पुस्तकें 197

एक परिचय

संत रज्जब के बारे में यह पुस्तक लिखने के पीछे एक लंबी कहानी है जो आज से 28 साल पहले, 6 जनवरी, 1987 को शुरू हुई। राजस्थान पत्रिका की पाठक होने के नाते मुझे नन्दकिशोर पारीक द्वारा लिखित 'नगर परिक्रमा' लेख को पढ़ने का मौक़ा मिला जिसकी पहली कड़ी का शीर्षक था—'महात्मा दादू के पठान शिष्य'। यह शीर्षक अपने आप में जिज्ञासा उत्पन्न करनेवाला था कि दादू जी के यह पठान शिष्य कौन थे? यह थे साँगानेर (जयपुर) के रहनेवाले रज्जब। जयपुर निवासी होने के नाते साँगानेर के रज्जब जी के बारे में और अधिक जानने के लिए मेरी उत्सुकता बढ़ती गई और मैं पत्रिका का बेसब्री से इंतज़ार करती। रज्जब जी की दादू दयाल की शरण में आने की घटना इतनी रोचक थी कि इसे पढ़कर मुझे उनके जीवन और वाणी का गहराई से अध्ययन करने की प्रेरणा मिली। निर्गुणधारा के संतों में विशेष रुचि होने के कारण मैं इनकी वाणी को खोजने के कार्य में भी जुट गई। राजस्थान पत्रिका से ही मुझे यह जानकारी भी मिली कि रज्जब जी की वाणी का प्रकाशन स्वामी सेवादास ने कराया था जो जयपुर के दादू महाविद्यालय के संस्थापकों में से एक थे। इसके बाद मैंने रज्जब जी के जीवन से जुड़े हर एक प्रसंग को पत्रिका में से काटकर तारीख़वार सँभालकर रखना शुरू कर दिया। सँभाली हुई वही सामग्री आज इस पुस्तक का आधार बनी है।

रज्जब जी पर किए गए शोधकार्य तथा उनकी वाणी के गहन अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि निर्गुणधारा के महान संत दादू दयाल जी के प्रमुख शिष्यों में रज्जब जी का विशिष्ट स्थान है। यह बात तो सभी जानते हैं कि उस समय संतों के संदेश और उपदेश का आधार मौखिक होता था।

बाद में शिष्य इस उपदेश को लिपिबद्ध करके उसका संग्रह कर लिया करते थे। यह लिखित सामग्री एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाई जाती थी। इस प्रकार रज्जब जी के विषय में थोड़ी-बहुत जानकारी दादू संप्रदाय के साहित्य में उपलब्ध है और कुछ जानकारी समकालीन साहित्यकारों द्वारा लिखे गए हिंदी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से प्राप्त होती है।

रज्जब जी के परिवार, जन्म-स्थान एवं मृत्यु की तिथि के बारे में प्राप्त जानकारी का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इतिहासकारों ने ग्रंथों एवं जनश्रुतियों को ही अपने तथ्यों का आधार बनाया है। इसका मूल कारण यही है कि संतजन प्राय: अपने संबंध में जानकारी देने में कोई रुचि नहीं रखते।

संत रज्जब जी के संबंध में लिखी गई पुस्तकों में से बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के एक डच विद्वान श्री डबल्यु.एम.कैलवर्ट द्वारा लिखित *द सर्वांगी ऑफ़ द दादूपंथी रज्जब*, डा. बृजलाल वर्मा द्वारा लिखित शोध ग्रंथ *संत कवि रज्जब: संप्रदाय और साहित्य* एवं डा. नन्दकिशोर पाण्डेय द्वारा लिखित *संत रज्जब* विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें उपलब्ध जानकारी के आधार पर रज्जब जी का जन्म-स्थान साँगानेर (जयपुर) माना गया है जो आम्बेर (आमेर) से 14 मील दक्षिण में स्थित है।

रज्जब जी के पठानवंशीय होने के पक्ष में अलग-अलग मत प्रचलित हैं, परंतु यह तथ्य सर्वमान्य है कि मुग़लों के शासनकाल में भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में पठानों का अधिक आना-जाना था। रज्जब जी के पिता चाँद ख़ाँ, पठान होने के कारण आमेर में उप सेनानायक थे। इसके अतिरिक्त पठानों के नामों के अंत में 'ख़ाँ' लगाने की परंपरा आज भी प्रचलित है। अत: रज्जब जी के मूल नाम के अंत में जोड़ा गया 'ख़ाँ' शब्द भी उन्हें पठान वंश का मानने के लिए एक ठोस प्रमाण प्रस्तुत करता है।*

श्री दादू पंथ परिचय के आधार पर रज्जब जी का जन्म 1567ई. (विक्रमी संवत् 1624) चैत्र माह में साँगानेर में हुआ। कहा जाता है कि एक

* संत कवि रज्जब, पृ.9

पठान चाँद ख़ाँ को यह बालक जंगल में एक निर्जन स्थान पर मिला। वह उसे उठाकर अपने घर ले आया और अपनी नि:संतान पत्नी की गोद में बालक को डाल दिया और कहा कि इसे अपना ही बेटा मानकर इसकी परवरिश करो। चाँद ख़ाँ ने इस बालक का नाम रज्जब अली ख़ाँ रखा। कुछ समय बाद जब उनके यहाँ भी एक पुत्र का जन्म हुआ, तो उसका नाम अज्जब अली ख़ाँ रखा गया। रज्जब जी ने तत्कालीन परंपरा के अनुसार व्यायाम, कुश्ती तथा अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा भी प्राप्त की। रज्जब जी सुडौल एवं आकर्षक व्यक्तित्व के थे। वह जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे और बचपन से ही उनके भीतर ज्ञान-प्राप्ति की लगन थी। उनकी रचनाओं और संकलनों में उनके ज्ञान की स्पष्ट झलक मिलती है। साधु-संतों एवं फ़क़ीरों की संगति में रहने तथा उनसे भगवत् चर्चा करने में उनकी गहरी दिलचस्पी और लगन थी।

जनगोपाल द्वारा लिखी दादू जन्म लीला परची में जो उल्लेख है उसके अनुसार दादू जी आमेर में 1579-1591/93 ई.(संवत् 1636 से संवत् 1648 या 1650) तक रहे। इन्हीं दस-बारह वर्षों के दौरान वह संत दादू दयाल जी से आमेर में मिले और उनके शिष्य बने।* इसके अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य और संस्कृति के इतिहासकार पुरोहित हरिनारायण शर्मा को भी रज्जब जी के कुल, परिवार एवं जन्मतिथि के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। पुरोहित जी के अनुसार रज्जब जी के जन्म के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, परंतु यह निश्चित है कि 122 वर्ष की आयु में आप परलोक सिधारे।

रज्जब जी ने अपनी वाणी में संतों के उपदेश के मूल सिद्धांतों की बड़ी स्पष्ट व्याख्या की है। उनका मानना है कि संत-महात्मा किसी भी मज़हब, मुल्क या समय में क्यों न अवतरित हुए हों, उनका उपदेश एक समान होता है। मिसाल के तौर पर अद्वैत की चर्चा करते हुए रज्जब जी इस पहलू पर बल देते हैं कि साँईं सब का 'एक' है, परंतु अफ़सोस! दुनिया इस बात से बेख़बर है। इसी तरह वह समझाते हैं कि परमार्थ का

* जनगोपाल कृत दादू जन्म लीला परची, विश्राम 16, पृ.188-89

ख़ज़ाना हमारे अंतर में है और भरपूर है, ज़रूरत है तो केवल उस ख़ज़ाने तक पहुँचने की। किंतु उस तक पहुँचा कैसे जाए? यह ख़ज़ाना हमें एक देहधारी सतगुरु की शरण में जाकर ही प्राप्त हो सकता है। आंतरिक साधना में गुरु और गोविंद के प्रति प्रेम, शरण, विनती और प्रार्थना के भाव व्यक्त करते हुए वह कहते हैं कि प्रेम की गहराई में ग़ोता खानेवाले को एक अजीब-सी मस्ती का एहसास होता है। प्रेम ही सच्ची इबादत है जो भक्त को उसकी मंज़िल तक पहुँचाती है। एक सच्चा प्रेमी ही विरह की धधकती हुई अग्नि में कूद सकता है। प्रेम से भरे उस भक्त की पुकार ही सच्ची विनती और प्रार्थना है।

रज्जब जी ने अपनी वाणी में कर्मकांड का ज़ोरदार शब्दों में खंडन किया है ताकि हम सचेत हो जाएँ और विचार करें कि असलियत क्या है। दिखावे की भक्ति का खंडन करते हुए, उन्होंने कबीर जी की तरह स्पष्ट शब्दों में कहा है: '*रज्जब मन मूंडे बिना, शिर मूंडे कछु नांहिं।*'[1] इसके साथ ही उन्होंने मदिरा तथा मांस के सेवन का भी सीधे और कड़े शब्दों में विरोध किया है: '*व्रत न मद्य मांसहि भखे।*'[2]

रज्जब जी के प्रवचनों का सुननेवालों के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता था और वे उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे। यह निपुणता उन्हें अपने सतगुरु की कृपा से ही प्राप्त हुई। आगे दिए गए सुंदर वृत्तांत से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

अपने गुरु के हुक्म से रज्जब जी ने साँगानेर के आसपास के क्षेत्रों में सत्संग करना शुरू कर दिया। उन्हें सत्संग सुनने तथा सुनाने में अत्यधिक रुचि एवं लगन थी। उन्हीं दिनों रज्जब जी कभी-कभार एक अन्य पंडित का सत्संग सुनने भी जाया करते थे। उन्होंने देखा कि वह पंडित अनमोल वचनों को विभिन्न उदाहरणों द्वारा भक्तों के सामने प्रस्तुत करता था। इस कारण उसके सत्संग बड़े रोचक तथा प्रभावशाली हो जाते थे और सीधे लोगों के हृदय को छू लेते थे। रज्जब जी अकसर यह सोचकर उदास हो जाते कि ऐसी कुशलता उनमें क्यों नहीं है। जब दादू जी ने अपने शिष्य को इस तरह अनमना-सा देखा तो इसका कारण पूछा। रज्जब जी ने

बिना संकोच अपनी उदासी का कारण बता दिया। तब दादू जी ने रज्जब को दृष्टांत प्रस्तुत करने में निपुणता का वरदान दिया। कहा जाता है कि इसके बाद रज्जब जी दृष्टांत देने में इतने निपुण हो गए कि दादू पंथ की साहित्य परंपरा में अन्य कोई भी भक्त रज्जब जी की इस ख़ूबी की बराबरी नहीं कर पाया। उनकी वाणी में अनेकों दृष्टांत मिलते हैं। जैसे मन की निर्मलता ज़रूरी है, यह बात इस तरह समझाई गई है:

> रज्जब सेवा संत की, मन मैले करि कीज।
> सो कृषि कैसे नीपजे, भून जु बाह्या बीज॥[3]

मन में मैल रखकर संत-महात्माओं की सेवा करने से कोई लाभ नहीं होता, जैसे भूने हुए बीज ज़मीन में बोने पर उगते नहीं हैं, नष्ट हो जाते हैं।

इसी तरह एक और दृष्टांत देते हैं: '*माया छाया पांव तल, जब सांई सूरज शीश।*'[4] जब सूरज सिर पर होता है तब छाया पैरों के नीचे आ जाती है, इसी प्रकार जब भजन द्वारा साधक परमात्मा को पा लेता है, तब माया पैरों में आ गिरती है।

रज्जब जी ने अपनी वाणी में कहीं-कहीं प्रश्नों द्वारा अपनी बात स्पष्ट की है। उन्होंने अधिकांश दोहों में आम तौर पर इन शब्दों का प्रयोग किया है जैसे, '*कही विचार करि*', '*समझ देख मन माहीं*' और '*देखि जीव में जोड़ि*'। ऐसे शब्द जिज्ञासु को चिंतन के लिए विवश करते हैं। उन्होंने वाणी निजी अनुभव के आधार पर बग़ैर किसी फेर-बदल के कही है: '*रज्जब ज्यों थी त्यों कही, ता में फेर न सार*' और '*जन रज्जब साँची कही, ता में फेर न सार*'। संक्षेप में कहें तो रज्जब जी की वाणी गूढ़ रहस्यों से भरपूर, सुंदर तथा मनमोहक है। इसे पढ़ते-पढ़ते हृदय सहज ही प्रभु प्रेम से भर जाता है। उनकी वाणी तो बहुत अधिक है, किंतु इस पुस्तक में उनकी वाणी में से प्रमुख विषयों से संबंधित कुछ अंश लेकर विस्तार से चर्चा की गई है।

जनक गोरवानी

1

जीवन में एक निर्णायक मोड़

रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांध्या मोर ।
आया था हरिभजन को, चला नरक की ठौर ॥[1]

रज्जब जी के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना उनके विवाह से संबंधित है। यह घटना आपके जीवन का एक निर्णायक मोड़ साबित हुई। सोलह वर्ष की आयु में रज्जब जी का वैवाहिक संबंध आमेर के एक प्रतिष्ठित पठान कुल में तय किया गया। विवाह के लिए बारात आमेर को रवाना हुई। बाराती जब मावठा सरोवर पर पहुँचे तो रज्जब जी को परम संत दादू जी का स्मरण हो आया। एक व्यक्ति से पूछने पर पता चला कि दादू जी का आश्रम यहीं है और आजकल वह यहीं पर ठहरे हुए हैं। रज्जब जी ने अपने साथियों से कहा कि संत दादू दयाल का दर्शन करके आगे चलेंगे। साथियों ने उस समय रुककर दर्शन करने से मना किया, परंतु रज्जब जी अड़े रहे। मजबूरन बारातियों को रुकना पड़ा। जब दूल्हे के वेश में रज्जब जी ने अपने कुछ साथियों के साथ आश्रम में प्रवेश किया तो देखा कि दादू जी ध्यानमग्न थे। सभी शांतभाव से दादू जी के सामने बैठ गए। रज्जब जी उनके ठीक सामने बैठे। थोड़ी देर बाद साथियों ने कहा, 'दर्शन हो गए, अब चलो।' तब रज्जब जी ने कहा, 'हमको तो दर्शन हो गए किंतु दादू जी ने हमको नहीं देखा है। इसलिए उनके नेत्र खुलें तब तक बैठो, जिससे वह भी हमको देख लें।'* जब दादू जी ने

---

* श्री दादूचरितामृत, पृ. 324

आँखें खोलीं तब रज्जब जी उठे और दंडवत प्रणाम करके फिर वहीं अपने स्थान पर जा बैठे। दादू जी ने उन पर गहरी दृष्टि डाली और देखा कि एक सुंदर, सुडौल युवक दूल्हे के वेश में उनके सामने बैठा हुआ है। उसका मुखमंडल परम शांत है और चेहरे पर जिज्ञासा के भाव हैं। दादू जी ने उस पर कृपा-दृष्टि डालते हुए कहा:

कीया था इस काम कौं, सेवा कारण साज।
दादू भूला बंदगी, सर्‌या न एकौ काज॥[2]

अर्थात् परमात्मा ने तुम्हें यह सुंदर शरीर अपनी भक्ति के लिए दिया था, परंतु तुम तो प्रभु की इस कृपा को भूलकर ऐसी दिशा में जा रहे हो जहाँ तुम्हारे स्वार्थ और परमार्थ दोनों में से एक भी सिद्ध नहीं हो सकेगा।

इन वचनों का अर्थ समझकर रज्जब जी सचेत हो गए। उसी समय अपने सिर का मौर-मुकुट उतारकर अपने छोटे भाई अज्जब अली ख़ाँ के सामने रखकर कहा, 'जाओ तुम इस मौर को सिर पर रखकर विवाह कर लो, मैं अब विवाह नहीं करूँगा।' इस पर बहुत हलचल मच गई। किसी ने कहा, 'साधु ने रज्जब पर भुरकी (वशीकरण मंत्र) डाल दी है।' किसी ने कहा, 'ऐसा त्याग अनुचित है।' किसी ने कहा, 'साधु के वैराग्ययुक्त वचनों का प्रभाव ऐसा ही होता है। वैराग्य होने पर त्याग अनुचित नहीं माना जाता।' सभी अपनी-अपनी सोच के अनुसार कुछ-न-कुछ कह रहे थे। उस समय रज्जब जी के पिता चाँद ख़ाँ ने हाथ जोड़कर दादू जी से प्रार्थना की कि वह दया करें और रज्जब को समय पर जाकर विवाह करने की आज्ञा प्रदान करें। तब दादू जी ने रज्जब जी से कहा, 'कुछ विचारकर ही काम करो, साधुपने का निर्वाह तलवार की धार पर चलने के समान है। इसलिए जाओ विवाह कर लो। अभी तो तुम्हारा विवाह हो रहा है, विवाह न करने पर जब पराई स्त्रियों की ओर देखोगे, वह अच्छा नहीं माना जावेगा।'* फिर दादू जी ने इन वचनों द्वारा रज्जब जी को सचेत किया:

* श्री दादूचरितामृत, पृ. 325

इंद्री के आधीन मन, जीवत सब जाचै।
तिणें तिणें के आगे दादू, तिहूँ लोक फिर नाचै॥[3]

अर्थात् इंद्रियों के अधीन हुए इस मन को अपनी माँगें पूरी करने के लिए न जाने किस-किस के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। नतीजा यह होता है कि फिर वह कर्मों के जाल में उलझकर जन्म-मरण के चक्र में फँसा हुआ तीनों लोकों में भटकता फिरता है। इसलिए यही उचित समय है, सोच-विचार करके विवाह कर लो, हठ मत करो। तब रज्जब जी ने विनम्र भाव से हाथ जोड़कर कहा:

रज्जब त्यागी घर घरनि, पर नारी न सुहाय।
अहि अपनी तज काँचुली, का की पहरे जाय॥[4]

अर्थात् मैं अपनी होनेवाली पत्नी का त्याग कर रहा हूँ। मुझे दूसरे की स्त्री कभी नहीं अच्छी लगेगी। सर्प अपनी केंचुली त्यागकर दूसरे सर्पों की केंचुली ग्रहण नहीं करता।*

यह कहकर रज्जब जी ने दादू जी को आश्वस्त किया कि मैं परनारी को कभी भी बुरी नज़र से नहीं देखूँगा। मेरे लिए पराई स्त्रियाँ माँ के समान होंगी: '*माता मेरी सकल ही, जो जन्मी जग आय।*'[5]

रज्जब जी के वैराग्य भाव को देखकर उनका परिवार और बाराती वहाँ से चल पड़े। ऐसा कहा जाता है कि उस कन्या का विवाह रज्जब जी के छोटे भाई से करवा दिया गया। रज्जब वहीं बैठे रहे और उन्होंने परम संत दादू दयाल जी से विनती की कि वह उन्हें अपने चरणों में स्थान दें। दादू जी के उपदेश से उन्हें मनुष्य-जीवन के लक्ष्य का बोध हुआ। उन्होंने अपनी वाणी में मनुष्य-देह को 'रत्नों सौं भरी'[6] कहकर इसके महत्त्व का बखान किया है।

* संत रज्जब, पृ. 56

यह अनमोल जीवन

यह संसार बाज़ीगर के तमाशे जैसा भ्रम से भरा हुआ है, यहाँ कोई भी वस्तु सदा रहनेवाली नहीं है। यहाँ तक कि मनुष्य-देह भी एक निश्चित अवधि के बाद नष्ट हो जाती है। घर-परिवार सब काल के घेरे में हैं। जैसे सपनों की दुनिया की कोई सच्चाई नहीं होती, मृग को रेत में जल प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार यह संसार मिथ्या है, एक भ्रमजाल है: 'स्वप्ना को साचा नहीं, नहीं मृछन मधि नीर।'[7]

यहाँ जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस संसार में जन्म लेने का क्या लाभ है? मनुष्य-देह प्राप्त करने का क्या फ़ायदा है?

रज्जब जी कहते हैं कि यह अटल सत्य झुठलाया नहीं जा सकता कि मनुष्य-देह को पाकर ही जीव परमार्थ की प्राप्ति कर सकता है। मनुष्य-शरीर की रचना के दो पहलू हैं—एक जड़ यानी भौतिक तथा दूसरा चेतन। भौतिक शरीर पाँच तत्त्वों से बना है जिसमें आत्मा उसी प्रकार निवास करती है जैसे रूई के बीच बिनौला होता है: 'रूई तार तत्त्व पंच है, विगत विनौला प्रान।'[8]

जड़ तत्त्व तो बाहरी संसार के पाँच तत्त्वों से आहार ग्रहण करके शरीर का पोषण करते हैं, परंतु शरीर के भीतर निवास करनेवाले, इसे सजीव बनानेवाले चेतन तत्त्व आत्मा का पोषण प्रभुभक्ति के द्वारा ही होता है:

रज्जब पिंड पलै ब्रह्माण्ड में, तत्त्वहिं तत्त्व अहार।
प्राणि पोषिये भजन ज्ञान सौं, विरला पोषणहार॥[9]

सभी संतों की तरह रज्जब जी भी समझाते हैं कि यह देह केवल हाड़-मांस की ही रचना नहीं है, इसके भीतर अनंत भंडार भरे हैं: 'रज्जब रीता तू नहीं, गुरु गोविन्द सु माँहिं।'[10] इसके अंदर स्वयं सतगुरु और परमात्मा विराजमान हैं। फिर भी कैसी विडंबना है कि इस सत्य से अनजान मनुष्य को अपने ही भीतर छिपे इस ख़ज़ाने की सुध नहीं है! असंख्य अज्ञानी जीव परमात्मा की खोज में बाहर इस भौतिक संसार में भटकते फिर रहे हैं:

बाट बहैं ब्रह्माण्ड की, बटाऊ सु अनेक।
रज्जब प्राणी पिंड में,पंथ चले कोउ एक॥[11]

रज्जब जी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि वह प्रभु कहीं बाहर नहीं है, बल्कि हमारे अंतर में निवास करता है: 'आतम रथ है राम का, आतम का रथ देह'[12] और फिर उसे खोजने के लिए हम बाहर क्यों जाएँ? 'रज्जब समझो यहु सुखन, मालिक है मौजूद'[13] यदि हम संतों के वचनों को समझें और उन पर अमल करें तो हम परमात्मा को अपने अंदर प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

अंतर्यामी उर बसै, साधुन दिया दिखाय।
रज्जब ढूंढण मांहिले, बाहर कींधै जाय॥
माँही सोधो मांहिले, आतम अंतर जोय।
रज्जब तन मन ले रमे, सु भीतर कहिये सोय॥[14]

आत्मा और परमात्मा दोनों ही अंतर में हैं। उसे पाने के लिए आंतरिक साधना द्वारा मन को तन के दायरे से ऊपर उठाकर उसी में रम जाना पड़ता है। भले ही आप सात द्वीप और नौ खंडों वाली पृथ्वी का कोना-कोना छान मारें, किंतु आपको परमात्मा बाहर कहीं नहीं मिलेगा। इतनी मेहनत करके भी कुछ हाथ नहीं आएगा। रज्जब जी कहते हैं कि उसे प्राप्त करने के लिए तुम्हें अपनी चेतना को बड़े यत्न से उर-घर यानी दोनों भौंहों के मध्य में एकाग्र करना होगा:

सप्त द्वीप नौ खंड फिर, हाथ चढे कछु नाँहिं।
रज्जब रजमाँ पाइये, आये उर घर माँहिं॥[15]

शास्त्रों में आत्मा के आवरण के रूप में मनुष्य के अंतर में पाँच कोश बताए गए हैं—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश। अन्न के आधार पर रहने के कारण देह को अन्नमय

कोश कहते हैं। पाँच कर्मेंद्रियों सहित प्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं, जिसके साथ मिलकर देह सब कार्य करती है। पाँच ज्ञानेंद्रियों सहित मन को मनोमय कोश कहते हैं, इसी से सांसारिक विषयों की प्रतीति (अनुभव) होती है। पाँच ज्ञानेंद्रियों सहित बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं, यही कर्म और कर्मफल भोगने के लिए अहंभाव लेकर मनुष्य के संसार में आने का कारण बनता है। इस विज्ञानमय कोश से परे आनंदमय कोश है जो कारण शरीर में स्थित है। रज्जब जी समझाते हैं कि इन पाँच कोशों की सीढ़ियों को पार करने पर परमात्मा का परमधाम आता है:

> पैड़ी पंच तीन पर पैड़ी, सप्तै अष्ट सिवान।
> रज्जब चढै सु कोटि में, ऊंचा अगम दिवान॥[16]

इन पाँच कोशों के अतिरिक्त तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण इन तीन गुणों की सीढ़ियाँ पार करने के साथ ही चित्त की सात अवस्थाओं* को भी लाँघना पड़ता है। यह अष्टांग योग† की हद से भी परे है। इन सब से ऊपर उठने पर ही आत्मा प्रभु के धाम में प्रवेश कर सकती है।

रज्जब जी ने अपने उपदेश में मनुष्य-देह को 'सौंज शिरोमणि' कहा है: '*चौरासी लख मांहिं न ऐसी और है*'[17] यानी जीव को चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद दुर्लभ पारमार्थिक रत्नों से भरी यह मनुष्य-देह राम का सौदा करने के लिए मिलती है। इसलिए इसे सृष्टि का सरताज कहा जाता है। परमात्मा से मिलाप करने की युक्ति ही नहीं, बल्कि ख़ुद परमात्मा भी हमारे शरीर में विराजमान है।

आप कहते हैं कि इस अवसर को पाकर व्यर्थ में क्यों बरबाद कर रहे हो? ऐसा अवसर फिर कभी नहीं मिलेगा। उस परमपिता का मनुष्य की

---

* (1) शुभेच्छा यानी भलाई की इच्छा रखना; (2) सुविचार यानी उत्तम विचार; (3) तनुमानसा यानी मन के फैलाव को अत्यंत कम करना; (4) सत्वापत्ति यानी सारवस्तु की प्राप्ति का प्रयत्न; (5) असंसक्ति यानी निर्लेप रहना; (6) पदार्थभाविनी यानी सांसारिक पदार्थों में रुचि न होना और (7) तुरीयगा यानी तुरिया अवस्था के प्रति आकर्षण।

† यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्प समाधि।

रचना करने का केवल एक ही उद्देश्य है, उस उद्देश्य पर सोच-विचार करो और परमात्मा की भक्ति में मन लगाओ: '*एक अलिफ को यहु किया, आदम का औजूद*'[18] और '*रज्जब सौदा राम सौं, इहिं अवसर करि लेह।*'[19] इस सौदे की शर्तों के अनुसार यदि जीव नाम के सुमिरन में लग जाए तो वह नर से नारायण का रूप बन सकता है। वह हमें सावधान करते हुए कहते हैं: '*मुक्ति द्वार मिनखा जनम, रज्जब बाद न खोय*'[20] यानी मुक्ति के इस द्वार, मनुष्य-जन्म को व्यर्थ न गँवाओ। मनुष्य-जन्म के महत्त्व को समझो और पारमार्थिक रत्नों की इस माला के द्वारा रात-दिन सतगुरु के बताए नाम का सुमिरन करो।

> *इहिं काया कल्याण भजन की ठौर है।*
> *चौरासी लख मांहिं न ऐसी और है॥*
> *ता में कीजे काम राम रट लीजिये।*
> *परि हां रे रज्जब इहिं बेर विलम्ब न कीजिये॥*[21]

परंतु यह कार्य कैसे किया जाए? इस समस्या के समाधान के लिए रज्जब जी ने जीव को भक्ति के लिए प्रेरित किया है:

सब तज भजिये राम

प्रभु ने अपनी मौज में आकर हमें यह शरीर नाम के सुमिरन द्वारा सत्य की खोज के लिए बख़्शा है। हम सौभाग्यशाली हैं कि परमात्मा ने यह अनमोल पूँजी प्रदान करने के लिए हमें चुना है। परमात्मा द्वारा बख़्शी गई यह मनुष्य-देह रूहानी दौलत से भरपूर है। मानव-शरीर की अद्भुत रचना और इसके अनेक गुणों से ही हमें पता चल जाता है कि परमात्मा का हमारे प्रति कितना प्रेम है:

> *चौरासी सौं काढि कर, जब दी मिनखा देह।*
> *राम कछु राख्या नहीं, रज्जब समझ सनेह॥*[22]

प्रभु ने मनुष्य-शरीर को मुक्ति प्राप्त करने का साधन बनाया है, लेकिन माया-मोह में पड़ा हुआ जीव इस बात से अनजान है:

सांई अपणी सौंज को, कीन्हा आदम ठाट।
रज्जब जीव जाणे नहीं, भूला निपट निराट॥[23]

जिस जीवात्मा को मनुष्य-देह मिलती है, उसके लिए प्रभु ने कुछ कर्तव्य भी निर्धारित किए हैं और वे कर्तव्य क़र्ज़ के रूप में हैं, जिसे हमें किश्तों में चुकाना है:

रिण न उतार्‌या राम का, पिंड प्राण जिन दीन।
रज्जब तिनहिं उधार दे, मन वच कर्म सो छीन॥[24]

आप फ़रमाते हैं कि रोज़ निश्चित समय तक नाम का सुमिरन-भजन करना ही इस क़र्ज़ की किश्त अदा करना है। मनुष्य-शरीर में आने पर जीव को यही कार्य सौंपा गया है और यदि यह कार्य संपन्न नहीं हुआ तो समझो यह अवसर व्यर्थ चला गया। लेकिन हम सांसारिक जीवों जैसा अधम और कौन हो सकता है? हम परमात्मा के इस महान उपकार के बदले उस क़र्ज़ से मुक्त होने की कोई कोशिश ही नहीं करते। इतना ही नहीं, हम जो कुछ भी करते हैं वह भी फल की आशा रखकर ही करते हैं।

मनुष्य-जीवन की अवधि निश्चित है और चौरासी के चक्कर काटती हुई हर जीवात्मा को एक लंबे अरसे के बाद उसके प्रारब्ध के अनुसार निर्धारित समय के लिए मनुष्य-शरीर प्रदान किया जाता है। जैसे जुआ खेलते समय कभी सीधा पासा पड़ जाता है, वैसे ही मनुष्य-जन्म भी चौरासी में पड़ा हुआ सीधा पासा है—'रे प्राणी पासा पड़या।'[25] अगर प्रभु भक्ति से प्रभु के मिलाप का कार्य पूरा हो गया तो समझो जन्म-मृत्यु पर विजय प्राप्त हो गई और अगर यह कार्य पूरा नहीं हुआ तो हमारी हार है यानी हमारे लिए फिर से चौरासी का दुखदायी चक्कर तैयार है।

अब के जीते जीत है, अब के हारे हार।
तो रज्जब राम हिं भजो, अल्प आयु दिन चार॥[26]

हमें हर तरफ़ से अपने ख़्याल को समेटकर मन-वचन और कर्म से अंतर में विराजमान परमात्मा का भजन करना चाहिए: '*रज्जब रटिये रैन दिन, राम नाम इकतार।*'[27] उन्होंने एक ही पंक्ति में सहज रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण बात बता दी है कि प्रभु-नाम की रट लगाए रहो तथा आठों पहर उस नाम से जुड़े रहो। यही संतों का मूल उपदेश है और यही इस मनुष्य-शरीर का मुख्य उद्‌देश्य है।

जल तरंग के जीवने, गाफिल कहा गंवार।
पीछे ही पछिताहुगे, रज्जब राम संभार॥[28]

यहाँ मनुष्य-जीवन की अल्प अवधि की ओर संकेत है। मनुष्य-जीवन की तुलना जलतरंग के साथ करते हुए रज्जब जी हमें सचेत कर रहे हैं: हे मूर्ख! तू असावधान क्यों है, क्यों अज्ञानता में पड़ा हुआ समय गवाँ रहा है? बाद में पछतावे के सिवाय और कुछ भी हाथ नहीं आएगा; समय रहते उस परमपिता परमात्मा का, उस कुलमालिक का जो '*साँई सबका एक है*'[29] नाम सुमिर ले, उसकी भक्ति कर ले। तू तो इस संसार के शक्लों-पदार्थों से दिल लगाकर बैठा है, ऐसे में उस 'एक' की प्राप्ति कैसे होगी?

2

साँईं सबका एक है

साहिब सबका एक है, राखै नाम अनेक।
रज्जब समझे समझ ही, पूरण परम विवेक॥[1]

रज्जब जी के जीवन का एक रोचक वृत्तांत सुनने में आता है कि दुरसा नाम के एक चारण* को अपने ज्ञान पर बहुत अभिमान था। एक बार उसने ज्ञानियों की सभा में अपने ज्ञान का सिक्का जमाया और अपनी सफलता पर गर्व करता हुआ वह रज्जब जी के पास आ पहुँचा और उनके ज्ञान की टोह लेने के उद्देश्य से उसने रज्जब जी से कहा:

बावन अक्षर सप्त स्वर, गल भाषा छत्तीस।
इतने ऊपर जो कथे, तो जानूं कवि ईश॥[2]

अर्थात् अगर कोई बावन अक्षर, सात स्वर तथा मुख से बोली जानेवाली छत्तीस भाषाओं से परे श्रेष्ठतम बात करे, तो मैं उसे कवियों में सर्वश्रेष्ठ मान सकता हूँ। इस पर रज्जब जी तटस्थ भाव से बोले:

बावन अक्षर सप्त स्वर, गल भाषा छत्तीस।
इतने ऊपर उर भजन, अन अक्षर जगदीश॥[3]

* राजा की प्रशंसा के गीत गानेवाले

अर्थात् बावन अक्षर, सात स्वर तथा मुख से बोली जानेवाली छत्तीस भाषाओं से ऊपर तो अकथनीय, अनुपम, नि:अक्षर परमात्मा का भजन (नाम) है, जो सबके हृदय के अंदर विराजमान है।

यह सुनकर दुरसा के हृदय से मिथ्या अहंकार दूर हो गया।

अनुभव आगे हारता, विद्या का विद्वान।
रज्जब ने पल में हरा, दुरसा का अभिमान॥[4]

उसने रज्जब जी का शिष्य बनने की इच्छा ज़ाहिर की। रज्जब जी ने उसे आमेर में दादू दयाल जी के पास जाकर शरण लेने की सलाह दी।

जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए हमें मनुष्य-जीवन का अनमोल अवसर मिला है वह कुलमालिक एक है, केवल और केवल एक। देश और काल के अनुसार अलग-अलग भाषाओं में उसके नाम अलग हो सकते हैं: '*रज्जब नाम सु एक के, अनन्तों कहे अनन्त।*'[5] लेकिन नाम के आधार पर किसी प्रकार का द्वैतभाव नहीं है। सभी पूर्ण संत-महात्माओं के समान रज्जब जी ने भी उस परमपिता परमेश्वर के संबंध में इसी सत्य को स्थापित किया है कि वह 'एक' है और हर जीव के अंदर उसका निवास है। अपनी वाणी में कई दृष्टांत देकर रज्जब जी ने परमात्मा के सर्वव्यापक स्वरूप की चर्चा की है। उनका कहना है कि वह प्रभु सबसे अलग होते हुए भी इस संसार के सभी शक्लों-पदार्थों में समाया हुआ है: '*अकल सकल सब माँहिं।*'[6] रज्जब जी के जीवन की यह घटना भी यही दर्शाती है:

खाटू गाँव के राजा भरूटिये राव ने एक बार दादू दयाल को गाँव आने का निमंत्रण दिया। उधर राजा के एक दुष्ट मंत्री ने दादू जी के ख़िलाफ़ राजा के कान भरने शुरू कर दिए जिससे राजा की श्रद्धा डाँवाँडोल हो गई। जब दादू जी अपने शिष्यों के साथ खाटू पहुँचे तो राजा ने उनसे कई प्रश्न पूछे। दादू जी शांत भाव से उत्तर देते रहे। फिर भी राजा ने कहा, 'यह तो चतुराई है, ज्ञान तो नहीं है।' इस पर दादू जी ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप वहाँ से चल दिए। फिर मंत्री के भड़काने पर राजा ने उनके मार्ग में मदमस्त हाथी छोड़ दिया। दादू जी के एक तरफ़ गरीबदास जी और

दूसरी तरफ़ रज्जब जी चल रहे थे। हाथी को आता देखकर गरीबदास जी ने कहा, 'महाराज, इस मार्ग में तो षडयंत्र दिखाई देता है।' दादू जी ने उत्तर दिया, 'षडयंत्र करनेवालों की ही हानि है।' इतने में मतवाला हाथी समीप आ पहुँचा। तब बलशाली रज्जब जी हाथी को रोकने के लिए आगे बढ़े। किंतु दादू जी ने रोक दिया और कहा, 'क्यों आगे बढ़ते हो? उसमें हमारा रक्षक परमात्मा नहीं है क्या?' गुरु का संकेत पाते ही रज्जब जी पीछे हट गए। हाथी उनके समीप आया, दादू जी के चरण अपनी सूँड़ से छुए और उनका आशीर्वाद पाकर एक ओर चल पड़ा।

अनेक में 'एक'

रज्जब जी ने परमात्मा के अद्वैत स्वरूप की खुलकर चर्चा की है। वह कुलमालिक 'अकल अनूप अकेला'[7] यानी रचना से परे होने के कारण अरचित है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। वह अद्वैत स्वरूप है, सर्वोच्च है और माया के बीच रहते हुए भी माया से अलग है। केवल यह संसार ही नहीं, बल्कि यहाँ मौजूद हर एक जीवात्मा उस एक की ही अंश है। जैसे एक ही प्रकाशमान दीपक अनेक दर्पणों में प्रतिबिंबित होकर उनमें दिखाई देता है, उसी प्रकार वह एक परमात्मा ही सब जीवात्माओं में दिखाई देता है:

अवतार आतमा आरसी, आदि नारायण दीप।
रज्जब एक अनेक मध्य, पै दीपक दीप उदीप॥[8]

इस निरंतर परिवर्तनशील और चलायमान संसार में केवल परमात्मा ही स्थिर है, ठीक वैसे ही जैसे आकाश में बिजली, वायु और बादल तो चलायमान हैं, परंतु उनके साथ आकाश चंचल नहीं है: 'बीज वायु बादल चपल, पै शून्य न चंचल होय।'[9] वह कुलमालिक अनेक जीवों में होते हुए भी उनसे मुक्त है किंतु वही 'एक' सब में समाया हुआ भी है। यह रहस्य हैरान कर देनेवाला है कि हर जगह मौजूद होते हुए भी वह प्रभु सबसे अलग है। पाँच तत्त्वों के शरीर में समाया हुआ होने पर भी वह उसके बंधन

से मुक्त है, तीन गुणों की इस रचना से न्यारा है और सबसे अद्भुत बात तो यह है कि सबसे अलग होते हुए भी वह सबके अंतर में विराजमान है:

एक अनेकों से मुकत, अनेक एक मधि आन।
जन रज्जब इस पेच को, हेरि हुये हैरान॥[10]

उस एक के प्राप्त होने से सब कुछ मिल जाता है, लेकिन सब कुछ पाकर भी वह एक प्रभु नहीं मिलता: 'एक मिल्यूं सारे मिलै, सब मिल मिल्या न एक।'[11] ऐसा अद्भुत है वह परमात्मा! जिस प्रकार अनेक मोतियों को एक साथ पिरोकर धागा उन्हें आपस में बाँधे रखता है, परंतु फिर भी उस धागे की हस्ती अलग होती है: '*मणिगण अनन्त सूत मधि एकै।*'[12] उसी प्रकार सभी जीवों में विद्यमान प्रभु सबके साथ रहता हुआ भी सबसे अलग है। वह मायामय संसार में व्याप्त होते हुए भी माया से निर्लिप्त है, निर्मल है, तीनों गुणों के बंधन से परे है: '*अंजन मांहिं निरंजन निर्मल, गुणातीत गुण मांहीं।*'[13]

रज्जब जी द्वारा दिए गए उदाहरण इतने सटीक और विषय के अनुरूप हैं कि बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। परमात्मा के सर्वव्यापी स्वरूप तथा अनेक में उसी एक के समाहित होने के संबंध में दिए गए ये उदाहरण इसी बात का प्रमाण हैं:

एक सरोवर सब भरैं, भाव भिन्न घर जाँहिं।
रज्जब सब मिल एक ह्वै, उलटे सरवर माँहिं॥[14]

एक हिं कंचन काटि कर, बहु भूषण करि जाँहिं।
रज्ज्ब भान्यो मिल गये, ताके ताही माँहिं॥[15]

अठारह भार बहु भांति की, ता मधि स्वाद अनेक।
रज्जब अज्जबता बनी, हरि हरियाली एक॥[16]

एक ही सरोवर से कई लोग बरतनों में जल भरकर अलग-अलग उपयोग के लिए अपने-अपने घरों को ले जाते हैं--कोई पीने के लिए

ले जाता है तो कोई नहाने के लिए, परंतु यदि उन सभी बरतनों का जल फिर से सरोवर में उलट दिया जाए तो सारा जल मिलकर एक हो जाता है। सोने की एक ही डली को काटकर उससे विभिन्न आकार के कई आभूषण बनाए जाते हैं, लेकिन जब ये सारे गहने इकट्ठे करके आग में पिघलाए जाते हैं तो ये सभी सोने की एक डली का रूप ले लेते हैं। इसी तरह अलग-अलग देहरूपों में निवास करनेवाली परमात्मा की अंश रूप आत्माएँ जब वापस परमात्मा में समा जाती हैं तो फिर से एक हो जाती हैं। इसी संदर्भ में रज्जब जी का एक और उदाहरण है। संपूर्ण वनस्पति में अनगिनत रूप हैं और उनमें स्वाद भी भिन्न-भिन्न हैं, किंतु यह बात चकित करनेवाली है कि सबमें हरियाली एक ही है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह विभिन्न रूपों वाले इस संसार में एक ही हरि यानी परमात्मा कण-कण में समाया हुआ है।

उस परमात्मा के निज स्वरूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। किंतु सत्य से अनजान अज्ञानी लोग उस एक को अनेक मानने लगते हैं।

उस 'एक' की प्राप्ति

उस 'एक' को, उसमें समाए बिना, उसी का स्वरूप बने बिना पाया नहीं जा सकता, जबकि असलियत यह है कि मन के साथ बँधी होने के कारण जीवात्मा अपने मूल स्रोत उस परमात्मा की पहचान नहीं कर पाती और मन की अनेक भावनाओं के पीछे भागते-भागते अनेकता के झमेले में उलझ जाती है: 'एक न पावै एक बिन, तू ह्वै रह्या अनेक।'[17] हर धर्म के लोग अपने-अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करने में ख़ुशी महसूस करते हैं। लेकिन रज्जब जी का कहना है कि उस अद्वैत के आशिक़ों का धर्म तो बस प्रेम होता है, उसकी नज़रों में न कोई हिंदू है, न कोई मुसलमान: 'रज्जब आशिक एक के, तिनके दोन्यों नाँहिं।'[18]

इस द्वैत के दायरे से ऊपर उठकर अद्वैत अवस्था प्राप्त की जा सकती है: 'रज्जब द्वितीय भाव न दर्शे, अंग समाये अंग।'[19] इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने की शुरुआत शरीर में फैली सुरत की धाराओं को शिवनेत्र

यानी तीसरे तिल में स्थिर करने से होती है, जिसे रज्जब जी ने समता घर कहा है: 'समता घर बैठे सुरति, कदे न देखे दोय।'[20]:

समता की यह अवस्था सतगुरु की सहायता के बिना प्राप्त नहीं होती:

> सद्गुरु बिन समता नहिं आवै, नीच ऊंच निगुरा सु दृढ़ावै॥
> एक हि पवन एक ही पानी, बुधि बिन बीच वैरता ठानी॥
> एक हि आतम एक शरीरा, समझ बिना बहु अंतर वीरा॥
> सौंज सबै विधि एक बनाई, दुविधा दुर्मति है रे भाई॥[21]

जिसे सतगुरु नहीं मिले, उसके मन में ऊँच-नीच का भाव बना रहता है। किंतु विचार करके देखें तो बात समझ में आती है कि जल तथा वायु किसी भेदभाव के बिना सबका कार्य समान रूप से कर रहे हैं, इस तरह आपस में वैर-विरोध करना हमारी मूर्खता की निशानी है। सबमें एक ही आत्मा है, शरीरों की रचना भी एक-सी है और उन्हें रचनेवाला भी एक ही है; यह सब देखकर भी अगर हम दुविधा में, द्वैत में पड़े हुए हैं तो यह हमारी कुमति का ही परिणाम है। विचार न करने के कारण ही हमें संसार में अनेकता दिखाई देती है। इसलिए शंकाएँ दूर करने के लिए और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए देहधारी सतगुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करना ज़रूरी है।

3

गुरु से मिलाप

गुरु पूज्या गुरु पूजिये, गुरु पूजन की आस।
रज्जब अज्जब यहु कही, सुनहु सनेही दास॥[1]

प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में गुरु का मिलाप पहली माँग है, क्योंकि गुरु से मिलाप के बिना जीव के संशय दूर नहीं होते और संशय दूर हुए बिना विश्वास अटल नहीं हो पाता। रज्जब जी ने अपनी वाणी में कहा है:

सद्गुरु बिन संदेह को, रज्जब भाने कौन।
सकल लोक फिर देखिया, निरखे तीनों भौन॥[2]

अर्थात् सारी दुनिया में घूमकर देख लिया, तीनों लोकों में भी देखा, परंतु सतगुरु के सिवाय ऐसा कोई नहीं मिला जो संदेह दूर कर सके क्योंकि ये संदेह इतने दृढ़ हैं कि भिन्न-भिन्न धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करने पर और उन पर चिंतन-मनन करने पर भी, ये दूर नहीं हुए: '*संशय सबल न भाग ही, व्याकरण विचारा।*'[3]

अपने सतगुरु संत दादू जी से मिलाप के बाद रज्जब जी की काया ही पलट गई। संत दादू ने अनंत कृपा करके उन्हें प्रभु भक्ति का गूढ़ ज्ञान दिया और आंतरिक साधना की युक्ति समझाकर उन्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। उनकी वाणी में संत दादू दयाल जी से दीक्षा-प्राप्ति के प्रमाण मिलते हैं:

रज्जब शिष दादू गुरु, दिन्हा दीरघ ज्ञान।
तन मन आतम ब्रह्म का, समझ्या सब सु स्थान॥[4]

गुरु को जब योग्य शिष्य मिलता है तो गुरु की दया से शिष्य के लिए आंतरिक साधना सहज हो जाती है, उसका मन निश्चल तथा निष्काम होकर शांत हो जाता है: *योग्य शिष्य गुरु मिलत ही, लहै शिष्य विश्राम। दादू से रज्जब मिलत, तुरत भया निष्काम॥*[5] संत दादू दयाल जैसे पूर्ण सतगुरु के साथ रज्जब जैसे सुयोग्य एवं सुपात्र शिष्य का संपर्क होते ही रज्जब जी इस संसार से पूरी तरह विमुख होकर अंतर्मुखी साधना में लीन हो गए। नि:संदेह एक पूर्ण गुरु का इस मृत्युलोक में आने का ख़ास मक़सद होता है। गुरु के बिना युक्ति नहीं मिलती, सही सोच और सही दिशा का बोध नहीं होता:

गुरु बिन गम नहिं पाइये, समझ न उपजे आय।
रज्जब पंथी पंथ बिन, कौन दिसावर जाय॥[6]

रज्जब जी के दीक्षित होने के बाद दादू जी ने उन्हें रज्जब अली ख़ाँ के स्थान पर रज्जब कहना शुरू कर दिया और तभी से रज्जब जी संत दादू दयाल जी की सेवा और संगति में रहने लगे।

कहा जाता है कि 122 वर्ष की लंबी आयु जीने के कारण रज्जब जी अपने गुरु दादू दयाल जी की सेवा और सत्संग में जितना अधिक समय रहे, उतना उनका अन्य कोई शिष्य नहीं रहा। अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार उन्होंने साँगानेर में रहकर ही परमात्मा की भक्ति की। गुरुभक्ति से भावविभोर होकर उन्होंने कहा है:

जन्म सफल तब का भया, चरणों चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुरु पाया॥[7]

गुरु: एकमात्र ज़रिया

रूहानी अभ्यास में सतगुरु की आवश्यकता बताते हुए रज्जब जी अपनी वाणी में लिखते हैं कि सतगुरु वास्तव में आत्मा और परमात्मा के बीच एक मध्यस्थ की भूमिका निभाता है:

रज्जब आतम राम बिच, गुरु ज्ञाता सु दलाल।
ज्यों चकवा चकवी मिले, सूरज काटे साल॥[8]

रज्जब जी समझाते हैं कि भले ही रात का अँधेरा चकवा और चकवी के लिए वियोग की पीड़ा लेकर आता है, लेकिन सुबह का सूर्य उदय होते ही रातभर से बिछुड़े चकवा और चकवी को फिर से मिला देता है, उनके दु:ख को समाप्त कर देता है। उसी प्रकार सतगुरु भी आत्मा और परमात्मा के पुनर्मिलन का सुख प्रदान करने के लिए मध्यस्थ का कार्य करता है। यह कार्य और किसी भी तरह से पूरा नहीं हो सकता: 'जन रज्जब जिव तो खुले, जे योग्य मिले गुरु पीर।'[9] सच्चे गुरु के मिलने से ही शिष्य बंधन-मुक्त हो सकता है।

यह ज़िम्मेदारी केवल सतगुरु ही पूरी कर सकते हैं, क्योंकि यह परमात्मा का ही विधान है कि आत्मा और परमात्मा का एक ही घर में निवास होने पर भी दोनों एक दूसरे से सदा अलग रहते हैं और इन्हें मिलाने का अधिकार केवल सतगुरु को है:

क्वारे आतम राम पीर परणाव ही।
यहु इन ही का काम इन्हु के आव ही॥[10]

सद् गुरु शोध शरीर करे जिव को जुदा।[11]

इस संदर्भ में रज्जब जी उदाहरण देकर समझाते हैं कि जब तक गुप्तचरों के द्वारा शत्रु के ठिकानों का सही-सही सुराग़ नहीं लगा लिया जाता, तब तक हाथी-घोड़ों पर सवार सैनिक भी सही ठिकाने पर

आक्रमण नहीं कर सकते। इसी तरह भले ही हमारे शरीर में परमात्मा से मिलने के सभी साधन मौजूद हैं, परंतु जब तक सतगुरु हमें परमार्थ की राह का भेद नहीं बताते, हम परमात्मा से मिलाप नहीं कर सकते।

खोजी बिना न खोज सु काहू कन कढै।
हय गय नर असवार फौज किहिं दिशि चढै॥[12]

संत सतगुरु परमात्मा के पुत्र हैं। परमात्मा के ये पुत्र संसार में जीवों को परमात्मा से मिलाने का व्यापार करने आते हैं: 'पूरे पीर दलाल सु इहिं सौदे सदा।'[13] उनके पास नाम की नाव होती है। वे संसार-सागर में डूबते हुए जीवों को उसमें चढ़ाकर पार लगा देते हैं। उनके इस महान उपकार की महिमा गाने के लिए शब्द भी कम पड़ जाते हैं:

नाम नाव साधू कनें, बूडत लेहि चढाय।
महिमा उस उपकार की, रज्जब कही न जाय॥[14]

स्पष्ट है कि परमात्मा से मिलाप करने के सारे साधन हमारे अंतर में मौजूद तो हैं, परंतु जब तक हमें देहधारी सतगुरु से एक निश्चित दिशा न मिले हम उन साधनों से लाभ नहीं उठा सकते।

वक़्त के गुरु की आवश्यकता

संसार में किसी भी हुनर को सीखने के लिए उस्ताद की ज़रूरत पड़ती है। कोई भी छोटे से छोटा काम जब पहली बार करना हो, चाहे वह सूई में धागा पिरोने जैसा छोटा-सा काम ही क्यों न हो, उसे भी किसी दूसरे से सीखना पड़ता है। फिर परमार्थ तो बहुत गूढ़ विषय है। जब तक देहधारी पूर्ण सतगुरु का मार्गदर्शन नहीं मिलता, तब तक प्रभुभक्ति का हुनर सीखना संभव नहीं है, इसके बिना जीव अपने अंदर पड़ी रूहानी दौलत से अनजान रहता है।

सब हुन्नर संसार के, किन हुं किये करि याद।
सो रज्जब किस काम के, अब दे सो उस्ताद॥[15]

गहराई से खोजबीन करने पर भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि पहले हो चुके सभी संत-महात्माओं ने सत्य का ही उपदेश दिया है। उन्होंने परमात्मा को अलख और अभेद कहकर पुकारा है, उनकी वाणी में चाहे कितना भी ज्ञान क्यों न भरा हो, तो भी वे आज हमारे सतगुरु नहीं हो सकते।

सब संतों के सत शबद, जिनमें अलख अभेव।
अब समझावे जो जिसहिं, सो तिस का गुरु देव॥[16]

अब यानी वर्तमान समय में जीव को जिस संत-महात्मा से सच्चे शब्द का भेद मिलता है, वही उसका सतगुरु है: '*सद्गुरु प्रत्यक्ष परसतैं, शिष की शंका जाँहि।*'[17] पहले हो चुके किसी महापुरुष के उपदेश पर विचार करने से या अनुसरण करने से ही शंकाओं का समाधान नहीं हो सकता। यहाँ रज्जब जी अपना निजी अनुभव बताते हुए कहते हैं कि मुझे भी तब प्रभु तक पहुँचने के मार्ग की समझ आई जब मैं अपने सतगुरु दादू जी की शरण में गया। तभी प्रभु की भक्ति में लीन होने पर मुझे विषय-विकारों से छुटकारा मिला:

गुरु दादू सौं गम भयी, समझ्या सिरजन हार।
रज्जब राते राम से, छूटे विषय विकार॥[18]

जीव इस संसार में अनेक प्रकार के भयानक कष्ट भोग रहा है। कभी शरीर साथ नहीं देता तो कभी मन की व्याधियाँ परेशान करती हैं। ऐसे में जीव के उपचार का क्या साधन हो? ऐसी भयंकर व्याधियों का उपचार करनेवाला और इस दर्द और पीड़ा से छुटकारा दिलानेवाला अगर कोई है तो वह है वक़्त का पूर्ण सतगुरु:

तन मन शिष रोगी भये, वैद्य मिले गुरु आय।
जन रज्जब सु हकीम हद, जासौं व्यथा विलाय॥[19]

देहधारी सतगुरु ही जीव के लिए जीता-जागता आदर्श बनकर, क़दम-क़दम पर उसका मार्गदर्शन करता है। गुरु का व्यवहार शिष्य

के लिए प्रेरणादायक होता है और संत जो उपदेश देते हैं उसका स्वयं उदाहरण बनकर दिखाते हैं। सच्चे संत सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। सदैव नाम-चिंतन में मग्न रहते हैं। ऐसे गुरु के केवल दर्शनमात्र से ही हृदय आनंद से झूम उठता है:

साँचे साध रहत सादी गति, सकल लोक में सारे॥
नाम प्रताप प्रपंच न माने, षट दर्शन सौं न्यारे।
भज भगवन्त भेष सब त्यागे, एक साँच के गारे॥
जिनके दर्श परस सुख उपजे, सो आये चल द्वारे।[20]

इसी संदर्भ में रज्जब जी यहाँ तक कह देते हैं: '*रज्जब रहिये संग तिन, विविध बहानों लार*'[21] भाव ऐसे संत की संगति अनेक बहाने बना-बनाकर करनी चाहिए।

गुरु कैसा होना चाहिए?

हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न उठता है कि गुरु की पहचान क्या है। अनेक मत प्रचलित होने से किसी साधारण व्यक्ति के लिए यह निर्णय करना मुश्किल हो जाता है कि असली गुरु कौन है? पूर्ण गुरु के लक्षण बताते हुए रज्जब जी ने कहा है:

दुर्बल देही दीन मत, रहे राम के संग।
जन रज्जब जग सौं जुदे, ये सन्तन के अंग॥[22]

शारीरिक बंधनों में न बँधा होना, विचार में दीनता होना, सांसारिक भावनाओं से अलग रहते हुए निरंतर नाम-सुमिरन द्वारा राम के संग रहना, यही संतों के लक्षण हैं। '*साधू हिरदा शून्य सम, मुक्ता मल न रहाय*'[23] यानी संत का हृदय आकाश के समान होता है। जैसे आकाश सभी मलिनताओं से मुक्त रहता है, इसमें कोई मैल नहीं रहता, वैसे ही संत का हृदय सब दोषों से रहित होता है। फिर संत के हृदय की तुलना सूर्य

से करते हैं, जैसे सूर्य में पृथ्वी का प्रतिबिंब नहीं पड़ता वैसे ही संत के हृदय में विषय-वासना, आशा नहीं रहती: 'साधू दिल सूरजमयी, प्रतिबिम्ब पड़े सुनाँहि।'[24]

सच्चा गुरु देह में रहते हुए भी विदेह होता है, मन और इंद्रियों के संग रहते हुए भी इनके अधीन नहीं होता:

तन माँहीं तन तैं जुदा, मन माँहीं मन दूर।
इन्द्रियों माँहि अलाहिदा, रज्जब साधू शूर॥[25]

वह संसार में रहते हुए भी इससे न्यारा रहता है और भजन-सुमिरन में पूरी तरह से दृढ़ हुआ हमारे लिए आदर्श रूप होता है। वह किसी भी प्रकार के बाहरी अनुष्ठान और भेष का समर्थन नहीं करता, बल्कि केवल उस 'एक' का ही गुणगान करता है।

ऐसा सद्गुरु शोधर कीजे, जाकी संगति युग युग जीजे॥
धर्म कर्म धोका धुर तोड़ै, तीरथ व्रत रहित ल्यौ जोड़ै॥
निष्कामी नौखंड नियारा, सुमिरण व्रत निवाहन हारा॥
निर्पख रहै राम गुण गावै, भरम भेष पख प्रीति न लावै॥[26]

सच्चा सतगुरु 'शब्द रूप गुरुदेव'[27] यानी निराकार शब्द (नाम) का प्रकट रूप होता है।

गुरु की दात

सतगुरु की शरण मिलने पर हमारी दिशा और दशा दोनों बदलने लगते हैं क्योंकि 'सुख दाता दुख भंजता, जन रज्जब गुरु साध।'[28]

जीव की तैयारी

गुरु का पहला कार्य जीव को परमार्थ के लिए तैयार करना है। जैसे एक कुशल कुम्हार मिट्टी को घड़े का रूप देता है ताकि उसमें जल भरा

जा सके, वैसे ही सतगुरु अपने सेवक को इस प्रकार गढ़ता है ताकि वह परमार्थ के सार को ग्रहण करने योग्य हो जाए।

गुरु ज्ञाता परजापती, सेवक माँटी रूप।
रज्जब रज सौं फेरि कर, घड़ले कुंभ अनूप॥[29]

गुरु एक शिल्पकार की तरह शिष्य को बड़े यत्न से गढ़ते हुए सँवारता है: 'रज्जब शिष सद्गुरु गड़े'[30] यह कार्य वक़्त का गुरु ही कर सकता है। वह जीव के धार्मिक आडंबरों तथा कर्मकांड के भ्रमजाल को तोड़ देता है। जीव को तीर्थ-व्रत आदि बाहरी क्रियाओं से निकालकर उसे आंतरिक साधना की ओर प्रेरित करता है।

जीव को दीरघ दात (दीक्षा)

सच्चा गुरु अपने शिष्यों को शरीर के अंदर ही वह दीरघ दात यानी दीक्षा देकर मार्ग बता देता है, जिसका अनुसरण करके उनकी आत्मा परमात्मा के पास पहुँच जाती है। इस ज्ञान के बिना नाम शरीर में होते हुए भी सुप्त अवस्था में रहता है। इस भवसागर को पार करने के लिए शब्द ही एकमात्र बेड़ा है: 'नाम शब्द निज नाव है, समुद्र रूप संसार।'[31] परंतु सतगुरुरूपी मल्लाह के बिना न बेड़े पर चढ़ा जा सकता है और न ही पार जाया जा सकता है: 'रज्जब गुरु खेवट बिना, चढे न पहुँचे पार।'[32] यह वही शब्द मार्ग है जिसे परमात्मा ने अनादि काल से हमारे अंदर अपने साथ मिलाप के साधन रूप में रखा है:

तन मन में मारग मिल्या, सद्गुरु दिया दिखाय।
जन रज्जब रमि राह उस, परम पुरुष कने जाय॥[33]

जैसे दर्ज़ी दो कपड़ों को सूई-धागे के साथ सिलकर एक कर देता है, उसी प्रकार 'गुरु दरजी सूई शबद'[34] सतगुरु शब्द की सूई से आत्मा को परमात्मा के साथ मिला देता है।

रज्जब जी कहते हैं कि जो कुछ भी हमें माता-पिता से प्राप्त होता है वह सब नाशवान है। वह यहीं का यहीं रह जाता है, लेकिन जो नाम की दात सतगुरु प्रदान करते हैं, वह सदा जीव के साथ रहती है। उनकी बख़्शी हुई नाम की दात कितनी अनमोल है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आंतरिक अभ्यास में कुछ उन्नति होने पर ही इसकी महानता का अनुमान लगाया जा सकता है। संसार में सतगुरु जैसा दानी कोई नहीं है:

मात पिता का दान ले, दिया सबन का भंग।
जन रज्जब जीव में जट्या, युग युग गुरु दत संग॥[35]

जीव की सँभाल

सतगुरु अपने शिष्य का हर तरह से ध्यान रखते हैं और हर शिष्य को भी अपने सतगुरु की दया-मेहर का अनुभव होता है। कछुवी अपनी दृष्टि से, कूँज अपने ध्यान से और अन्य पक्षी अपने पंखों की गर्मी देकर अपने अंडों से बच्चे पैदा करते हैं; किंतु सतगुरु की ऐसी अनुपम दया है कि वह अपने शिष्य की सँभाल दृष्टि द्वारा, ध्यान द्वारा और संगति द्वारा अर्थात् इन तीनों साधनों द्वारा करते हैं।

कछी चखी कूंजी सुरति, अन्य पंखि पंखवाय।
त्रिविधि अंड ज्यों गुरु शिषहुँ, रज्जब निपजे भाय॥[36]

जीव की कायापलट

सतगुरु जीव को साधारण अज्ञानी मनुष्य से ज्ञान संपन्न बना देते हैं। ऐसा माना जाता है कि जिसके ऊपर हुमा नाम के पक्षी की छाया पड़ जाए वह अति निर्धन होने पर भी बादशाह बन जाता है। बावने चंदन की सुंगधि से वन के अन्य वृक्ष चंदन बन जाते हैं और पारस के स्पर्श से लोहा सोना

बन जाता है। इसी प्रकार सतगुरु के उपदेश से जीव के लिए आध्यात्मिक साधना का मार्ग खुल जाता है और जीव इसी जन्म में संत की अवस्था प्राप्त कर लेता है, दूसरे जन्म का इंतज़ार नहीं करना पड़ता। यह सतगुरु का अनंत उपकार है, यही उनकी महिमा है:

हुमा बावने पारस सद्गुरु, कृत करतहि अधिकार।
जगदीश ईश ह्वै जन्म दूसरे, इन सौं अब की बार॥[37]

4

अंतर की साधना

रज्जब महिमा नाम की, नर पै कही न जाय।
जाके वश दोउ देखिये, कुदरत सहित खुदाय॥[1]

परमात्मा हर जीव में मौजूद है—यह बात रज्जब जी ने बार-बार अपनी बानी में दोहराई है। परंतु इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण कैसे मिले, परमात्मा तक पहुँचा कैसे जाए?

अंतर की साधना वह युक्ति है जिससे अपने अस्तित्व की पहचान होती है, परमात्मा से मिलाप होता है। रज्जब जी ने इसे सहज साधना कहा है। यह मार्ग जीव के अंतर में है, लेकिन इस मार्ग को जीव अपने आप नहीं समझ पाता। संत जीव को इस साधना की विधि बताते हैं: 'संतो बाट बटाऊ मांहीं, सो आपन समझै नांहीं।'[2] फिर अंतर्मुख होकर अभ्यास करने से अज्ञान के सभी परदे हटने लगते हैं और जीव परमात्मा को प्राप्त कर लेता है: 'इहिं परदे परदे सब जांहिं, गुरु प्रसाद परम पद मांहिं।'[3]

सभी संतों ने आंतरिक साधना का मार्ग जानने के लिए संतों की संगति पर बहुत बल दिया है। यह पहली सीढ़ी है। रज्जब जी भी यही समझाते हैं: 'साधु समागम होत हि पाइये, राम को नाम शिरोमणि साचो।'[4]

संतों की संगति

जीव का स्वभाव है कि उसे जैसी संगति मिलती है वह उसी रंग में रँग जाता है। संतों के सत्संग में आने से वह जीवन का असली लक्ष्य समझने

लगता है, परमार्थ की खोज करने लगता है। यदि हम परमार्थ के जिज्ञासु हैं, तब तो हमें सत्संग की ज़रूरत है ही और यदि हमें सतगुरु से अभ्यास की युक्ति मिल गई है तो भी हमें सत्संग की ज़रूरत है; क्योंकि सत्संग से निरंतर ऐसी प्रेरणा मिलती रहती है कि हम अपने लक्ष्य को नहीं भूलते। सत्संग का महत्त्व समझाते हुए रज्जब जी कहते हैं: 'रज्जब पलटे जीव सुध, साधू संगति आय।'[5]

आपने संतों के समागम को परमधाम में चढ़ने के लिए सीढ़ी, संसार सागर से तरने के लिए नौका और सब दुखों का नाश करनेवाली संजीवनी बूटी तक कहा है।

स्वर्ग नसीनी जगत जहाज, दीर्घ दुर्भिक्ष में ज्यों नाज।
दुख की दारू जीवन जड़ी, रज्जब साधु समागम घड़ी॥[6]

संतों के सत्संग में आकर संसार में रमे हुए जीवों का ख़्याल पलटकर परमात्मा में लगता है—'रज्जब साधू दरसतैं, साहिब आवे याद।'[7] हम उस माया को भूलने लगते हैं, जो हमें कभी भी नहीं भूलती और हमें वह परमपिता परमात्मा याद आने लगता है, जिसे हम हमेशा भूले रहते हैं: 'सदा अभूली भूलिये, भूल्या आवे याद।'[8]

संतों की संगति किए बिना कोई परमार्थ में सफल नहीं हुआ है: 'सत्संग बिन, सीझ्या सुन्या न कोय।'[9] क्योंकि सत्संग में संत जीवन के असली मक़सद के बारे में बताते हैं, वे पूजा-पाठ, कर्मकांड के आधार पर नहीं बल्कि अपने आंतरिक अनुभव के आधार पर इस मक़सद को पूरा करने की युक्ति बताते हैं। उनके वचन जीव के हृदय को झिंझोड़ देते हैं।

साधु न पूजै साधना, साधु कहैं समझाय।
जन रज्जब निज-नाम बिन, नर निष्फल सो जाय॥[10]

संतों के बाहरी सत्संग से प्रेरणा पाकर जब हम अंतर में 'सत्' के संग जुड़ते हैं, उसे आंतरिक सत्संग कहा जाता है। अंतर में उस सच्चे नाम से जुड़े बिना आत्मा ख़ाली की ख़ाली रहती है:

भाव भक्ति सत जत जुदे, अंग न आवहिं अंग।
रज्जब रीती आतमा, एक बिना सत्संग॥[11]

आप समझाते हैं कि संसार में दान-पुण्य आदि शुभ कार्य करने के लिए तो अड़सठ तीर्थस्थान हैं, परंतु सच्चा तीर्थ केवल आंतरिक सत्संग है। इसमें स्नान करने से आत्मा पवित्र हो जाती है। वह तीर्थ हमारे अंतर में स्थित है और उस तीर्थ पर पहुँचे बिना कोई भी पाप नहीं उतरता:

सत्य तीर्थ सत्संग है, जल जगदीश्वर नाम।
दान पुण्य को बहु किये, रज्जब अठसठ ठाम॥
तीरथ आतम राम है, परसे पावन होय।
जन रज्जब पहुँचे बिना, अघ उतरे नहिं कोय॥[12]

यह आंतरिक सत्संग का ही प्रभाव है कि 'कर्मकाल विघ्न व्याल, बहुरि नहीं लागै'[13] यानी जीव कर्म, काल तथा अन्य बाधाओं में नहीं फँसता। इस सच्चे नाम से जुड़े बिना, सच्चा सत्संग किए बिना 'हरि आवें क्यों हस्त'[14] उस हरि यानी परमात्मा से मिलाप कैसे हो सकता है?

सिफ़त 'नाम' की क्या कहें!

रज्जब जी ने अपने गुरु की संगति में रहकर, उनसे दीक्षा लेकर, साँगानेर में रहते हुए आध्यात्मिक साधना की। उसके फलस्वरूप जो उनमें परिवर्तन आया उसका परिचय देते हुए वह कहते हैं:

तन मन आतम लोह को, मिल्या सु पारस नांउ।
तिन तीन्यों कंचन किये, सत सुमिरन बलि जांउ॥[15]

अर्थात् प्रभुनाम के सच्चे सुमिरन पर मैं बलिहारी जाता हूँ जो पारस रूप है और इसका स्पर्श होते ही लोहा बने हुए तन, मन और आत्मा तीनों ही सोने में बदल गए हैं।

रज्जब जी ने 'नाम' को आध्यात्मिक साधना का आधार माना है:

सब इल्मों शिर अलिफ है, कुल कामिल इस माँहिं।
तू तामें पैवस्त हो, और कह्या कुछ नाँहिं॥[16]

नाम से जुड़े बिना शुभ कर्मों का भी कोई महत्त्व नहीं है। रज्जब जी कहते हैं कि सब शुभ कर्म उसी प्रकार हैं जैसे गणित में शून्य (0) होता है। प्रभु का नाम (1) एक के समान है। यदि शून्य से पहले एक लग जाता है तो कुल मिलाकर अंक दस (10) बन जाता है और उसका मूल्य बढ़ जाता है, इसी तरह नामरूपी अंक के जुड़ने से ही शुभ कर्मों का मूल्य बढ़ जाता है: 'सब सुकृत हैं शून्य सम, एका एक सु नाम।'[17] भले ही बाहरी तौर पर ऐसा लगे कि नाम का अभ्यासी जप, तप, तीर्थ, दान आदि शुभ कर्म नहीं कर रहा है, किंतु हरि-नाम की साधना में सभी शुभ कर्म शामिल हैं: 'नाम ठाम रोके न कोइ, जप तप तीरथ दान।'[18] आप जीव को स्पष्ट शब्दों में हिदायत देते हैं कि नाम के बिना जीवन व्यर्थ चला जाता है। इस साधना के बिना हम चाहे दूसरे कितने भी साधन अपना लें, चाहे जितनी कठोर मेहनत कर लें, फिर भी वह परमात्मा नहीं मिल सकता:

परम तत्त्व पावे नहीं, प्राणी जाय निराश॥[19]

जन रज्जब निज-नाम बिन, नर निष्फल सो जाय॥[20]

लेकिन लोग इस रहस्य को जानते ही नहीं हैं, वे दिखावे के साधनों को अपनाकर भक्ति का स्वाँग करते हैं: 'जन रज्जब जाणें नहीं, स्वाँग सरे क्या काम।'[21] स्वाभाविक है कि काल और माया के दायरे में आनेवाले ये बाहरी साधन जीव को इनके दायरे से परे भला कैसे ले जा सकते हैं? इसी लिए रज्जब जी ने इन साधनों को सूने साधन कहा है।

नाम ही जीव का स्वाभाविक रूप से असली ठिकाना है। जीवात्मा नाम से जुड़कर सदा के लिए अमर पद प्राप्त करती है। नाम में इतनी शक्ति है कि उसके द्वारा जीव ख़ुदा और उसकी क़ुदरत दोनों को देख सकता है:

रज्जब महिमा नाम की, नर पै कही न जाय।
जाके वश दोउ देखिये, कुदरत सहित खुदाय॥[22]

ऐसी अलौकिक क्षमता रखनेवाला नाम किसी भाषा विशेष का शब्द नहीं हो सकता। रज्जब जी ने अपनी वाणी में नाम के वास्तविक स्वरूप को खोलकर समझाया है।

नाम अनेक : वह 'एक' है

भाषाओं की भिन्नता के कारण प्रभु के अनेक गुणों का वर्णन करने के लिए उसके अनेक नाम रखे गए हैं: 'नाम अनेकों एक है, तो भज राम रहीम।'[23] उसके दयालु स्वभाव के कारण उसे दयालु, कृपालु आदि नामों से संबोधित किया जाता है। सृष्टि का रचयिता होने के कारण उसे कर्ता, ख़ालिक़, सृजनहार या रचनाकार आदि नामों से याद किया जाता है—'रज्जब नाम सु एक के, अनन्तों कहे अनन्त।'[24] महात्माओं ने गुणों के आधार पर हज़ारों की संख्या में प्रभु के नाम रख दिए हैं:

सब ही नाम स्वभाव के, काढ़े अकलि विचार।
जन रज्जब गुण गूंथ कर, जोड़े सहस हजार॥[25]

चूँकि ये नाम लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं, इसलिए इन्हें वर्णात्मक नाम कहा जाता है। ये सारे नाम भाषा के बावन वर्णों में आ जाते हैं, जो परिवर्तनशील तथा नाशवान हैं: 'बावन अक्षर बहु विस्तार, अक्षर सहित सु विनशन हार।'[26]

अनंत नाम होने के बावजूद रज्जब जी उस प्रभु को निनामा कहते हैं, यानी जिसका कोई निश्चित नाम नहीं है। उस नामरहित को समझाने के लिए ही अनेक नाम दिए गए हैं: 'नाम निनाम हिं दीन्ह।'[27]

आप समझाते हैं कि सच्चा 'नाम' मुक्ति का दाता है, परमात्मा की भक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है और विभिन्न भाषाओं में पाए जानेवाले विभिन्न

नामों से परे है: 'नाम परै वह नाम कहावै'[28] और 'निरक्षर सो इनमें नांहिं, रे मन समझ तहां चलि जांहिं।'[29]

सच्चा नाम

सच्चा नाम वास्तव में परमात्मा की शक्ति है। रज्जब जी ने नाम को परमात्मा का शरीर भी कहा है यानी निराकर परमात्मा 'नाम' में समाहित है।

निराकार का नाम तन, अलिफ अलह औजूद।
जन रज्जब यहु गहन गति, मालिक है मौजूद॥[30]

नाम (शब्द) के द्वारा ही परमात्मा ने सारी सृष्टि, सारे खंड-मंडल और सारे जीव उत्पन्न किए हैं। 'बीरज नाम निज'[31] नाम प्रभु का बीज है, उसका निज रूप है।

शब्दैं बंध्या शब्द गहि, शब्दैं शब्द खुलाण।
जन रज्जब इस पेच को, समझै संत सुजाण॥
आज्ञा इक ओंकार परि, पंच तत्त्व आकार।
उदय अस्त सब शब्द मधि, ता में फेर न सार॥[32]

पाँच तत्त्वों की यह रचना स्वयं कुलमालिक की आज्ञा से शब्द द्वारा ही अस्तित्व में आई है। 'षट् दर्शन खालिक खलक, सत्य शब्द के माँहिं'[33] यानी छः प्रकार के दर्शन-शास्त्र, सृष्टिकर्ता और सारी सृष्टि सच्चे (अविनाशी) शब्द के अधीन है। नाम सचखंड से इस मृत्युलोक की ओर लटक रही एक सूक्ष्म और अदृश्य ज़ंजीर है, जो हमारी आत्मा को राम के साथ बाँध सकती है: 'सांकल आतम राम को, नाम रूप निज जान।'[34] इस सृष्टि से शब्द के अलग होने पर यह नष्ट हो जाती है क्योंकि सृष्टि का प्रसार करनेवाला और इसकी व्यवस्था करनेवाला शब्द ही है। यही सत्य है, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता: 'ता में फेर न सार।'

सृष्टि का प्रसार करनेवाला यह शब्द हर जीव के अंतर में मौजूद है। परमात्मा द्वारा रचित कोई भी रचना शब्द से अलग नहीं है:

सकल पसारा शब्द का, शब्द सकल घट माँहिं।
रज्जब रचना राम की, शब्द सु न्यारी नांहिं॥[35]

अन्य संतों की तरह रज्जब जी भी सच्चे नाम की पहचान बताते हुए कहते हैं कि इसमें ध्वनि और प्रकाश है। हमारे अंतर में इस नाम की गूँज हर समय हो रही है। यह अलौकिक ध्वनि सब लोकों में सुनाई देती है:

रज्जब सुकृत नाम की, नित नौबत जहँ बाज।
सो सुनिये सब लोक में, ऊँची अगम अवाज॥[36]

'*शब्द सदा परकाश*'[37]—शब्द में सदा प्रकाश मौजूद है जिसे आंतरिक दृष्टि से देखा जा सकता है: '*निर्मल नूर सु निरखो नैना।*'[38]

नाम केवल धुन नहीं है, इसमें प्रकाश भी है। जैसे दीपक राग गाने से ज्योति प्रकट हो जाती है, उसी तरह नाम की धुन से अंतर जगमगा उठता है और हृदय का अंधकार नष्ट हो जाता है: '*नाम सु दीपक राग है, जिहिं ज्योति प्रकाशै।*'[39] उसको अंतर्मुख होकर सुनने और देखने से अंतर का अंधकार दूर हो जाता है: '*सुनतों वहि देखतों, उर आँख्यों तम नाश।*'[40]

आंतरिक सफ़र की पाँच प्रमुख मंजिलों से गुज़रने के कारण हर जगह यह शब्द अलग रूप में सुनाई देता है । इसी लिए शब्द को पाँच प्रकार का कहा गया है। परंतु वास्तव में यह एक ही है। पाँच शब्द का यह भेद कोई पूर्ण संत ही जानता है: '*पंच भांति दर्शे इनहुं, निर्मल निगुन निहंग।*'[41] रज्जब जी ने पाँच प्रकार के शब्द का वर्णन पंच तिणे के रूप में भी किया है: '*पंच तिणे रज्जब रचे, मध्य मनोहर धाम।*'[42] प्रभु ने पाँच शब्दों की रचना की है और उनके मध्य उसका मनोहर धाम है। जो गुरुमुख अपने आप को पाँच नामों के मज़बूत धाम में सुरक्षित कर लेता है उसे फिर माया का भय नहीं सताता: '*पंच तिणे गुरु मुख छये, माया मेघ डर नाँहि।*'[43]

नाम के अभ्यास की अलग-अलग विधियों और उनसे प्राप्त होनेवाली अवस्थाओं का भेद बताते हुए रज्जब जी कहते हैं कि साधक धीरे-धीरे एक के बाद दूसरी अवस्था से गुज़रता हुआ आत्मा के विकास की चरम सीमा तक पहुँच जाता है। पहला अभ्यास वह है जिसमें साधक बाहरी साधन अपनाता है जैसे माला फेरकर सुमिरन करना। लेकिन मन बाहर की ओर भागता है, छल-कपट से भी भरा रहता है। मन के अंतर में एकाग्र न होने के कारण अभ्यास में गहनता नहीं आ पाती, केवल दिखावा ही होता है। ऐसा सुमिरन निष्प्राण क्रिया है। दूसरे प्रकार के अभ्यास में साधक अपने अंतर में निरंतर नाम-सुमिरन में लगा रहता है। मन में विचारों की तरंगें तो उठती रहती हैं लेकिन फिर भी ध्यान प्रभु की ओर रहता है। तीसरी अवस्था में साधक सुमिरन के बाणों द्वारा पाँचों विकारों का नाश कर देता है। जब ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है तो उसके मन में प्रभु के साथ मिलाप होने में कोई संदेह नहीं रहता। चौथी अवस्था में साधक नौ द्वारों से ध्यान को समेटकर नाम-भक्ति में पूरी तरह से मग्न हो जाता है। इस अवस्था में उसे अपने अंतर में छिपा रूहानी ख़ज़ाना प्राप्त हो जाता है और उसका सारा दुख दूर हो जाता है। पाँचवीं अवस्था अभ्यास की अंतिम अवस्था है। अब रोम-रोम से प्रभु के नाम का जाप होने लगता है और साधक को पूर्णता की प्राप्ति हो जाती है:

प्रथम नाम भजै संसार, कर माला काती संग लार।
मन में नहीं एक इकतार, तो इहै नाम मृतक व्यवहार॥
दूजे महल नाम की आश, भजबे लागा श्वासे श्वास।
अंतर ऊंघ उठै सब ओर, अह निशि लाग रहे निज ठौर॥
तीजे महल पंच शर पूर, पंच स्वभाव काढ दे दूर।
जब उपजे अन्तर यह मांहीं, तब पहुँचे संशय कछु नांहीं॥
चौथे महल जाय जब लेय, नौसे उलट नाम में देय।
नौ निधि निपज रहे तन मांहिं, तब प्राणी के दारिद जांहिं॥
पूरे महल पंच परि जाय, रोम रोम रट राम अघाय।
जन रज्जब युग युग यह ठाट, सद्गुरु कही नाम निज बाट॥[44]

अंतर की साधना कैसे करें?

नाम के अंतर्मुख अभ्यास के बिना दूसरा कोई भी साधन कारगर नहीं है, इसलिए यदि हम अपने आप को समझदार मानते हैं तो फिर उस सच्चे नाम को पाने की कोशिश क्यों नहीं करते जो हमारे अंतर में मौजूद है: *'सोई नाम नर उर बस्या, सीझे क्यों न सुजान।'*[45] अगर मनुष्य-जन्म को सार्थक करना है तो ख़्याल को हर तरफ़ से समेटकर, अंतर्मुख होकर इस शरीर में ही अंतर की यात्रा की शुरुआत करनी होगी: *'दह दिशि उलटि आव घर अपने, अमी महा रस पीजे'*[46] और *'उलटे चलि औजूद में, मरद मुसाफिर जाँहिं।'*[47]

आंतरिक साधना के तीन मूल अंग है: सुमिरन, ध्यान और शब्द-धुन।

सुमिरन करते हुए ध्यान बाहरी संसार से हटना शुरू हो जाता है और नौ द्वारों से ऊपर उठने लगता है। ध्यान द्वारा चेतना स्थिर होती है और तब जीव को असलियत की पहचान होने लगती है कि मैं शरीर नहीं बल्कि आत्मा हूँ। अंतिम चरण में जब शब्द-धुन सुनती हुई सुरत परमात्मा में लीन हो जाती है, तो यह अभ्यास की पूर्णता है।

साधना का प्रथम अंग: सुमिरन

सुमिरन साधना की पहली सीढ़ी है। *'रज्जब सुमिरे राम को, रोक दशों दिशि द्वार'*[48] यानी रज्जब जी ख़्याल को दसों दिशाओं अर्थात् दुनिया के सुमिरन से पूरी तरह हटाकर, नाम का सुमिरन करने की सलाह देते हैं।

> *निमिष मुहूरत नाम ले, तिल पल सुमिरन होय।*
> *जन रज्जब या उमर में, साफिल बरियाँ सोय॥*[49]

जो पल-दो पल का समय सुमिरन में लगाया जाता है, केवल वही समय ज़िंदगी में सार्थक होता है। जितने समय तक हम प्रभुनाम का सुमिरन करते हैं, समझो उतना समय ही हम जाग रहे हैं। जब वह सुमिरन भूल जाता है, समझो कि उतना समय हम सोए-सोए गवाँ देते हैं: *'सुमिरन भूले श्वास जिहिं, तब सूता पल लाग।'*[50]

रज्जब जी कहते हैं कि तू ऐसा सुमिरन कर कि तेरा तन अडोल रहे और मन निश्चल हो जाए। सुमिरन के लिए मन को ऐसे तैयार करना होगा कि *'रज्जब राखो नाम में पंच पचीसौं मन्न'*[51] और *'रटिये रैन दिन'*[52] इसी लिए आप कहते हैं: *'सोते सांई सुमिरिये, बैठा ब्रह्म समाल'*[53] अर्थात् सोते समय नाम का सुमिरन करना है, बैठे हुए भी प्रभु के नाम को याद रखना है और दुनिया के काम-काज करते हुए भी अपनी लिव उसी में लगाए रखनी है: *'तू हीं तू हीं तन में करे'*[54] यह अवस्था तभी प्राप्त होगी जब तू श्वासों की माला बनाकर उसे प्रेमरूपी हाथ से दिन-रात फेरता रहेगा यानी प्रेम भाव से किया जानेवाला सुमिरन ही लाभकारी है:

> *छः सौ सहस्र इकीस माल मनियें करै।*
> *हृदय हेत के हाथ रैन दिन सो फिरै॥*[55]

सुमिरन में निरंतर लगे रहने से जीव के अंदर कैसे परिवर्तन आता है और कैसे यह पता लगता है कि सुमिरन पूर्णता की अवस्था में पहुँच रहा है, इसकी चर्चा करते हुए रज्जब जी कहते हैं:

> *पाव नाम छाडै संसारा, अर्ध नाम शरीर बिसारा।*
> *पौंण नाम जीव वृत्ति त्यागी, सेर नाम साँई सुरति लागी॥*[56]

जब इस संसार से ध्यान पूरी तरह हट जाए तो समझो एक चौथाई भर नाम-सुमिरन हुआ, जीव शरीर के मोह-बंधनों से मुक्त हो जाए तो समझो आधा नाम-सुमिरन हुआ, मन की वृत्तियों के प्रभाव से छूट जाए तो समझो तीन चौथाई नाम-सुमिरन हुआ और सुमिरन करते-करते अंततः जब ध्यान निरंतर प्रभु में लगा रहे तो समझो कि सुमिरन पूर्ण अवस्था में पहुँच गया।

यह बात हमेशा याद रखनी होगी कि जीव सुमिरन द्वारा उसके नाम से जुड़कर ही परमात्मा के धाम पहुँच सकता है: *'मिलबे को मारग यही, और न दूजा कोय।'*[57] इसलिए जीव का केवल यही कर्तव्य है:

बंदे को यहु बन्दगी, साहिब करना याद।
यह सेवा सुमिरन यही, यही जिकर फरियाद॥[58]

परमात्मा को सदैव याद रखना ही सेवा है, यही सुमिरन है, यही उसकी महिमा का गुणगान है और यही भक्त की पुकार है। रज्जब जी ने सुमिरन को ही सच्चे हज का साधन माना है: 'जिकर जहाज बैठ तिर जग जल, रज्जब हाजी हज्ज करे।'[59] वे कहते हैं कि इस बात को जान लो कि सुमिरन जैसी कोई संपत्ति नहीं और ध्यान जैसा कोई धन नहीं। इसलिए निरंतर सुमिरन का सौदा करना, यही असली पूँजी है:

सुमिरन सम संपद् नहीं, धन नहिं ध्यान समान।
वित यह बारंबार ले, रज्जब रिधि रट जान॥[60]

साधना का दूसरा अंग: ध्यान

दीक्षा के समय बताई गई विधि के अनुसार नियमपूर्वक निरंतर नाम का सुमिरन करने से अभ्यासी की चेतना नौ द्वारों से सिमटकर दोनों भौंहों के मध्य एकाग्र हो जाती है। यहाँ चेतना को टिकाए रखने के लिए ध्यान का सहारा लेना पड़ता है। यदि पतंग की डोरी हमारे हाथ में है तो आकाश में उड़ती हुई पतंग दूर होते हुए भी हमसे दूर नहीं होती; यदि रस्सी हमारे हाथ में है तो घड़ा गहरे कुएँ में होने पर भी हमसे दूर नहीं होता; इसी तरह कुलमालिक परमात्मा दूर होने पर भी हमसे दूर नहीं होता, यदि ध्यान की डोरी हमारे हाथ में है:

गगन गुडी कुंभ कूप ह्वै, त्यों व अगम नर नाथ।
तो तीनों क्या दूर है, जे रज्जब रजु हाथ॥[61]

निरंतर ध्यान द्वारा ही प्रभु से मिलाप होता है: 'रज्जब एक हि ध्यान में, नर नारायण होय।'[62] इसलिए हमें दुनिया में कामकाज करते हुए अपना ध्यान कुलमालिक में लगाए रखना है: 'परम पुरुष का ध्यान धर, जैसे चन्द्र चकोर। जन रज्जब चारों पहर, मेली पलक न कोर॥'[63] निरंतर ध्यान द्वारा

ही प्रभु से मिलाप होता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए रज्जब जी ने लोक व्यवहार के कई उदाहरण दिए हैं।

कच्छपी दृष्टि सु ध्यान धर, अकल पुरुष की ठौर।
तो रज्जब सहजै मिले, परम पुरुष श्री मौर॥[64]

गऊ जाय वन खंड में, धरे वत्स पर ध्यान।
यूं रज्जब ह्वै राम सौं, तो पहुँचे हरि थान॥[65]

जैसे नटनी बरत चढ़, धरे कौन विधि ध्यान।
त्यों रज्जब रम राम मधि, मिले प्राण पति प्रान॥[66]

ज्यों कामिनि शिर कुंभ धरि, मन राखे ता माँहि।
त्यों रज्जब कर राम सौं, कारज विनशे नाँहि॥[67]

जैसे कछुवी का ध्यान सदा वहीं टिका रहता है जहाँ उसके अंडे होते हैं, इसी तरह यदि साधक का ध्यान निरंतर वहीं टिका रहे जहाँ प्रभु का ठिकाना है तो उसे प्रभु सहज ही मिल सकता है; जैसे गाय जंगल में चरते हुए अपने बछड़े में ध्यान लगाए रखती है, वैसे ही अगर जीव का ध्यान राम में रमा रहे तो वह हरि-धाम पहुँच जाता है; जैसे रस्से पर चढ़कर नटनी का ध्यान रस्से पर रहता है, वैसे ही जीव का ध्यान राम में रमा रहे तो परमात्मा मिल सकता है, जैसे नारी पानी का घड़ा सिर पर उठाकर चलती है, क्योंकि ध्यान हमेशा घड़े में रहता है इसलिए वह कभी गिरता नहीं। इसी तरह सब काम करते हुए मन परमात्मा में रखने से किसी कार्य में कोई बिगाड़ नहीं आता।

पूरी तरह समर्पित होकर परमात्मा का ध्यान करने से जीव चारों खानियों में अनंत काल तक भटकने से छूट जाता है। उसके संचित कर्मों के खेत ही कट जाते हैं और वह कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है: 'एक ख़ुदा यहिं ध्यावै, चारि खानि सो जीव न आवै।'[68]

तीसरे तिल में पहुँचना सुमिरन की पूर्णता है, वहाँ ठहर पाने की क्षमता हासिल करना ध्यान की पूर्णता है। फिर वहाँ शब्द की प्रकाशमय

धुन प्रकट हो जाती है जो जीव को परमात्मा की दरगाह तक, आत्मा के निजघर तक ले जाती है।

साधना का तीसरा अंग: शब्द-धुन

हमारे अंतर में शब्द की धुन निरंतर गूँज रही है। हालाँकि परमात्मा की दरगाह से आनेवाली यह आवाज़ सभी लोकों में गूँज रही है, लेकिन हम इस गूँज को समाधि की अवस्था में ही सुन सकते है:

> डाके सुमिरन सुकृत के, दिल सु दमामा साज।
> रज्जब छिप सु बजाइये, ह्वै सब लोक अवाज॥[69]

दीक्षा देते समय गुरु अंतर में अनहद शब्द की धुन से जुड़ने का तरीक़ा बताते हैं। इस धुन को सुरत द्वारा सुनना ही भजन कहा गया है।

जब भजन से अंतर में शब्द प्रकट हो जाता है, तो मन की चंचलता और काम, क्रोध आदि विकार नष्ट होने लगते हैं: 'रज्जब भागे भजन सुन, अघ इन्द्रिय गुण चोर।'[70] यह ठीक उसी तरह है जैसे सूर्य उदय होते ही अँधेरा, तारे, चंद्रमा और सर्दी कहीं दिखाई नहीं देते: 'रज्जब भजन भानु उर उदित ही, अस्त होय गुण चारि।'[71] रज्जब जी ने इसे समझाते हुए कहा है: शब्द वायु है और ज्ञान समुद्र है। जैसे समुद्र में बहनेवाली वायु से धूल नहीं उड़ती वैसे ही शब्द के प्रकट होने से अहंकार की धूल नहीं उड़ती:

> रज्जब शब्द समीर सम, बोध वारिनिधि जान।
> तहाँ बैन वायू चलै, उठै न गर्द गुमान॥[72]

शब्द-धुन सुनकर जैसे-जैसे जीव निर्मल होता है उसे परम आनंद की अनुभूति होने लगती है: 'श्रवण सुखी साँचे शब्द'[73] जैसे तुम्बिका* अपने साथ-साथ अपने ऊपर रखे बोझ को भी जल से पार कर देती है,

---

* नाव

इसी तरह जीव शब्द के सहारे संसार से परे आंतरिक जगत में प्रवेश पा लेता है: 'शब्द तुम्बिका भार, भव जल काढै भार धर।'[74]

कोई मज़बूत इरादे वाला साधक ही सुरत को शब्द पर सवार करके, दिलरूपी क़िले में प्रवेश करता है: 'श्रवण द्वार ह्वै दुर्ग दिल, चढै शब्द सामन्त।'[75] जिस साधक ने अपने मन को नाम-सुमिरन द्वारा एकाग्र करके परमात्मा का भजन किया, समझो उसने परमात्मा की प्राप्ति के सारे साधन अपना लिए, वही सच्चा त्यागी शूरवीर और बुद्धिमान है: 'सब करणी साधन किये, त्यागी शूर सुजान।'[76]

मरणे मांहीं जीवणा

अंतर की साधना द्वारा जब कोई अभ्यासी शरीर में फैली अपनी चेतना को समेटकर आँखों के पीछे इकट्ठा कर लेता है, तो वह जीते-जी मुर्दे जैसा हो जाता है, ऐसा लगता है उसका शरीर चेतनाशून्य हो गया है, लेकिन वह असल में मरता नहीं, जीवित ही रहता है। उसकी आत्मा एक सूक्ष्म तार से शरीर के साथ जुड़ी रहती है। अनेक संतों ने इसे जीते-जी मरना कहा है, रज्जब जी उस अवस्था को मरणे मांहीं जीवणा कहते हैं:

> मरणे मांहीं जीवणा, जीवण में मर जाय।
> रज्जब जीवण त्याग कर, मरणे में मन लाय॥[77]

अगर मनुष्य जीते-जी मरने का अभ्यास कर ले तो वह इस मौत में ही जीवन पा लेता है। हालाँकि वह बाहरी तौर पर देखने में वैसे का वैसा ही नज़र आता है परन्तु वह प्रभु से एकरूप होकर अमर जीवन बिताता है:

> जो जीवित-मृतक भये, तिन हिं काल भय नांहिं।
> रज्जब रहे सु राम व्है, सदा सजीवन माँहिं॥[78]

जीते-जी मरने की इस मंगलकारी अवस्था का फल बहुत मीठा होता है। किसी विरले गुरुमुख को ही इसकी मिठास का अनुभव होता है। इस अवस्था के विभिन्न चरणों का वर्णन करते हुए रज्जब जी कहते हैं:

संतो मरणै मंगल मीठा, सो गुरु मुख विरले दीठा॥
जो प्रथम माँडते मूये, सो राम कहण को हूये॥
दूजे देह जु त्यागी, सो आतम राम हिं लागी॥
तीजे आतम भूले, तिन सुरति सु पाया मूलै॥
चौथे चिन्तन कोई, तहाँ रज्जब एक न दोई॥[79]

जीते-जी मरने के पहले चरण में गुरुमुख संसार की ओर से उपराम होकर प्रभुनाम के सुमिरन में रम जाता है। दूसरी अवस्था में सुमिरन करते-करते ध्यान शरीर से सिमट जाता है, आत्मा प्रभु के नाम में मग्न हो जाती है। तीसरे चरण में आत्मा भूल जाती है कि मैं आत्मा हूँ, उसे ज्ञान हो जाता है कि वह परमात्मा का ही रूप है। चौथी अवस्था में आत्मा उसी का रूप हो जाती है।

अजपा जाप

जब जीव की लिव अंतर में गूँज रही शब्द-धुन से जुड़ जाती है, तब प्रयत्न किए बिना ही सुरत को शब्द-धुन सुनाई देने लगती है। इस क़ुदरती जाप को अजपा जाप कहा जाता है। अजपा जाप मुख और साँसों के बिना होता है। इसमें शरीर की सुधबुध नहीं रहती: 'वक्र बैन वायू रहित, होय सु अजपा जाप।'[80]

अजपा जाप से जीवात्मा अपने असली स्वरूप को पहचान लेती है पर परमात्मा की प्राप्ति के इस मार्ग पर कोई जाग्रत चित्त वाला ही चल सकता है:

बिन रसना राम हिं रटै, आतम अंतरि आय।
रज्जब पैंडे पीव के, चित चेतन कोउ जाय॥[81]

यह सत्य है कि यह अवस्था उसी जीव को प्राप्त होती है जिसे वह स्वयं प्रदान करता है:

जिस नुकते साहिब स्रवहिं, सही सु अजपा जाप।
रज्जब पावे प्राण सो, जा जीवहिं दे आप॥[82]

'मन तुरंग चेतन चढै'[83] अर्थात् जीवात्मा मनरूपी घोड़े पर सवार होकर गगन मंडल से होती हुई शून्य में पहुँचती है और परमात्मा से मिलाप करती है। लेकिन हमारा मन परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में सहयोग भी देता है और बाधाएँ भी खड़ी करता है। जब तक जीव मन की ग़ुलामी से मुक्त होकर उसे अपने वश में नहीं करता तब तक अंतर की साधना में सफल नहीं हो सकता:

जब रज्जब मन के तले, चौरासी लख जीव।
इस ऊपरि असवार है, सो कोउ पावे पीव॥[84]

5

चाल मन की, पसारा काल का

मन मूसा पंगुल भया, पी पारा हरि नाम।
रज्जब चाल न चलि सकै, रह्या ठाँव का ठाँव॥[1]

रज्जब जी बलिष्ठ और लंबे क़द के नवयुवक थे। कहा जाता है कि एक बार नारायणा धाम में दादू जी स्नान करके लकड़ी की बनी चौकी पर खड़े थे। उन्होंने शिष्य रज्जब को कहा कि जाओ, मेरी खड़ाऊँ ले आओ। तब रज्जब जी ने कहा कि गुरुदेव! आप चौकी पर ही विराजे रहें, मैं चौकी सहित आपको आसन तक ले चलूँगा। दादू जी क़द के छोटे एवं दुबले-पतले थे जिससे रज्जब जी को भ्रम हो गया कि उन्हें चौकी समेत आसानी से उठाकर ले जाया जा सकता है, इसलिए दादू जी के बार-बार कहने पर भी रज्जब जी ने जब हठ न छोड़ा तो दादू जी के मन में विचार आया कि रज्जब का चंचल मन अपने बलवान शरीर की ताक़त का अभिमान कर रहा है। जिस हृदय में गुरु को अध्यात्म का भंडार भरना होता है उसे गुरु कई बार सचेत भी करता है। दादू जी चौकी पर ही विराजे रहे। रज्जब जी उन्हें चौकी समेत जब उठाने लगे तो चौकी हिली तक नहीं। अपना सारा बल लगा देने के बाद भी चौकी उठाना तो दूर, वह उसे इंचमात्र भी हिला न सके। तब रज्जब जी को अपने गुरु के गौरव का ज्ञान और अपनी चंचलता का एहसास हुआ और उन्होंने उसी समय गुरु के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी। वह हाथ जोड़कर नम्र भाव से बोल उठे:

हिलै न चलै न पिलै न ठिलै, ऐसो रोपि रह्यो बलबंड विहारी।
अटै न मिट्यो न बट्यो न लुट्यो, अजु माया रु मान गये पचिहारी॥
हिलायो चलायो डुलायो न डोल ही, देख हु साधु सुमेरु तैं भारी॥
हो दादू व साधू व आदि अनादि शिरोमणि,
रज्जब देखि भयो बलिहारी॥[2]

हे संतजनो, गुरुदेव तो सुमेरु पर्वत से भी भारी हो गए हैं, जो हिलाने से हिल नहीं रहे, चलाने से चल नहीं रहे। इन्होंने अपने आप को ऐसा स्थिर कर लिया है कि अब वह किसी भी शक्ति से हिलाए नहीं जा सकते। शक्तिशाली माया और अभिमान इनको जीतने के लिए थक-हार गए, फिर भी इनका मन विषयों में नहीं रमा, काल के द्वारा इनकी सत्ता नहीं मिट सकी। इनकी अनंत शक्ति को देखकर मैं इन पर बलिहारी जाता हूँ।

मन का चंचल स्वभाव

वास्तव में मन ब्रह्म का अंश है। आत्मा की तरह यह भी अपने स्रोत से बिछुड़ा हुआ है। लेकिन यह कभी ब्रह्म से अपने बिछोड़े के दुख को महसूस नहीं करता: '*ब्रह्म विछोह न व्याप ही, भूला भोंदू मींच।*'[3] सांसारिक पदार्थों के पीछे भागते-भागते इसकी वृत्ति बाहर की ओर हो गई है।

मन चंचल है इसी लिए इसमें तरह-तरह की तरंगें उठती रहती हैं। यह न कभी किसी एक पदार्थ को पाकर संतुष्ट होता है और न ही एक स्थान पर टिकता है। यह तरह-तरह की इच्छाओं और तृष्णाओं से बँधा रहता है। पल भर के लिए जोगी बन जाता है और दूसरे ही पल में भोगी। जैसे गिरगिट अपना रंग बदलता है, उसी तरह यह भी पल-पल अपनी सोच बदलता रहता है: '*पल पल में पलटै मते, जैसी विधि किरकांट।*'[4] यह एक ऐसा भिखारी है जिसका कोई एक ठिकाना नहीं है। यह सदा तृष्णा के मार्ग पर आगे ही बढ़ता रहता है: '*मंगित मन ठाहर नहीं, नित तृष्णा मग पग्ग।*'[5] रज्जब जी कड़े शब्दों में मन को कुत्ता

कहकर संबोधन करते हैं कि इसकी हालत उस कुत्ते के समान है जो घर-घर झाँकता फिरता है। ऐसी हालत में भला राम कैसे मिल सकते हैं: *'रज्जब राम हिं क्यों मिले, कूकर की मति माँहिं।'*[6] चंचल होने के साथ-साथ मन मूर्ख भी है। यह नहीं जानता कि इसके लिए उचित क्या है, प्रभुभक्ति को छोड़कर मायामय संसार की ओर भागता फिरता है, ठीक वैसे ही जैसे कुत्ता और कौआ पकवान से भरे बरतन को छोड़कर मरे हुए जानवरों के बदबूदार कंकाल की ओर भागते हैं: *'कूकर काक करंक परि, पाक पूरि तजि जाँहिं।'*[7]

माया में लिपटा हुआ मन

मन संसार के पदार्थों के भोग का इतना आदी हो गया है: *'मन अमली इस मांड का'*[8] कि अगर एक इच्छा का दमन कर देते हैं, तो मन में हज़ार और इच्छाएँ उठ खड़ी होती हैं–*'एक मौज जे मारिये, तो उर उठैं हज़ार।'* माया का साथ पाकर यह उसके नशे में अंधा हो गया है: *'जब मन को माया मिले, तब मन आँधा होय।'*[9] मन के अंदर माया इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी है कि इसे चाहे जितना परे करने की कोशिश करें, यह फिर भी अपना प्रभाव डालती है। रज्जब जी ने माया के ऐसे प्रभाव को समझाते हुए कहा है कि केशों को काट-काटकर बिलकुल छोटा भी क्यों न कर दो तो भी ये कुछ ही दिनों में फिर से बढ़ जाते हैं: *'खंड-खंड करि काटिये, मन केशों डर नांहिं।'*[10]

माया जड़ और चेतन दोनों रूप में जीव के साथ लगी हुई है। धन-संपत्ति आदि जड़ माया है, जबकि मोह-माया चेतन माया हैं। शरीर नष्ट हो जाने पर माया के बाहरी प्रभाव भले ही दिखने बंद हो जाते हैं, परंतु वह फिर भी मन के साथ मज़बूती से जुड़ी रहती है: *'काल काया सौं काढ ही, पै माया कढै न मन्न।'*[11] यही प्रभाव अगले जन्म में मनुष्य के संस्कार, उसका स्वभाव बन जाते हैं।

सभी संतों की तरह रज्जब जी का भी यही मानना है कि मन को माया से अलग करना बहुत कठिन कार्य है। मन को सांसारिक पदार्थों के

भोग की इतनी आदत पड़ चुकी है कि इसका ध्यान परमात्मा की ओर जाता ही नहीं। गधे के शरीर पर यदि चंदन का लेप कर दिया जाए तो भी वह उस सुगंधित लेप की परवाह न करते हुए अपने स्वभाव की वजह से मिट्टी में ही लोटने लगता है। मन को भी चाहे जितना समझाया जाए, यह मौक़ा पाते ही विषयों की गंदगी में मुँह मारने लग जाता है:

> *गादह चंदन चरचिये, ख्याल खोलि सौं नांहिं।*
> *रज्जब छूट्यों छार में, यहु स्वभाव मन मांहिं॥*[12]

हमें लगता है कि हम माया को भोग रहे हैं परंतु सच तो यह है कि माया ही हमें निगल रही है: *'माया हमको खाय।'*[13] माया में जकड़ा हुआ जीव अपनी असंख्य चाहतों के कारण मलिन हो चुका है: *'बंदा गंदा होत है'*[14] तृष्णाओं ने मन को अपना दास बना लिया है, इसी लिए रज्जब जी ने मन को शैतान कहा है। इस शैतान का सोते रहना ही अच्छा है, जागते हुए तो यह संसार और इसके पदार्थों के पीछे भागता रहता है:

> *मन शैतान सूता भला, जाग्यों जग में जाय।*
> *रज्जब बीधे व्याधि में, सुमिरण करै न आय॥*[15]

मन पाँच ठगों का ठिकाना

नित नए स्वाद का शौक़ीन हमारा मन इंद्रियों के भोगों का ग़ुलाम बनकर मैला हो चुका है। भोगों की लज़्ज़तें इसके लिए दुख का कारण बन जाती हैं। जिस प्रकार दीमक तथा घुन लकड़ी को अंदर ही अंदर से खोखला कर देते हैं, उसी प्रकार इंद्रियाँ जीवात्मा को अपने प्रभाव से कमज़ोर बना देती हैं:

> *दीमक ग्रासै दारु को, घुण काष्ठ को खांहिं।*
> *यूं इन्द्रियों आतम गिली समझ देखि मन मांहिं॥*[16]

ये पाँच ज्ञानेंद्रियाँ ही मन के पाँच मुख हैं। यदि मन को वश में करने के लिए किसी एक मुख को बंद कर भी लेते हैं, तो भी यह अन्य चार मुखों द्वारा सभी दिशाओं में भागकर विषयों का भोग करता है:

मन केशरि के पंच मुख, गहि बंध्या मुख एक।
चार्यों मुख चहुं दिशि भखैं, रज्जब समझ विवेक॥[17]

जन्मों-जन्मों से माया का मोह, इच्छाएँ-तृष्णाएँ तथा इंद्रियों के भोग मन में अपना प्रभाव जमाए बैठे हैं और निर्बल जीव काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकाररूपी पाँच ठगों के चंगुल में फँसकर बेबस हो गया है। कामवासना तो काल से भी अधिक बेरहम है। जब मन में काम की लहर पैदा होती है, तब देह में जंगल की आग के समान लपटें उठती हैं: 'काम लहरि जब ऊपजे, तब देही दौं देय।'[18] काल तो एक ही दिन, मृत्यु के समय मारेगा, परंतु काम जीव का पीछा कभी नहीं छोड़ता:

रज्जब करड़ा काल सौं, काम सु काया मांहिं।
वह मारेगा एक दिन, यहु अह निशि छोडै नांहिं॥[19]

काम के अलावा अन्य विकार भी जीव पर हावी हो जाते हैं। अहंकार तो जीव का पतन ही कर देता है: 'मैं आये माया भयी, मैं नाहीं तब नांहिं।'[20] मैं-मेरी का भाव उसे सांसारिक पदार्थों के मोह में फँसा देता है और मोह के कारण तृष्णाएँ पैदा होती हैं। यही तृष्णाएँ धीरे-धीरे लोभ-लालच का रूप ले लेती हैं। जब ये विकार मन को चारों तरफ़ से घेर लेते हैं तो वह इतना कमज़ोर पड़ जाता है कि निर्लज्ज होकर माया के पीछे भागता रहता है: 'तृष्णा स्वार्थ लोभ अरु लालच, माँगण माया जांहिं।'[21]

ये विकार तरंगों की तरह उमड़ते हैं। जैसे ही काम की लहर उठी तो काम हावी हो गया और क्रोध की तरंग उठी तो क्रोध हावी हो गया: 'क्रोध लहरि मिल क्रोध मन'[22] इन पाँचों विकारों ने जीव को बोझा ढोनेवाला गधा बना लिया है। विकारों में जकड़े मन का साथ पाकर आत्मा के नूर पर पर्दा पड़ जाता है। यह अपना गौरव और अपनी पहचान ही भूल गई है: 'नाहर त्योड़ा निरखिये, बकर्यों बाँध्या बाघ।'[23] आत्मा शेर है लेकिन बकरियों ने यानी इंद्रियों ने इसे बड़े यत्न से बंदी बना लिया है।

इस तरह मन प्रभुप्राप्ति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बन गया है। मन की ऐसी हालत को रज्जब जी ने कच्चा मन कहा है। यह हाँडी में अनाज के कच्चे दानों की तरह उछलता है: 'काचा कूदै ऊछलै, निश्चल बैठे नांहिं।'[24] एक अन्य दृष्टांत द्वारा रज्जब जी समझाते हैं कि जैसे समुद्र का खारा जल अगर सीप में मौजूद कच्चे मोती को छू ले तो वह मोती गल जाता है, उसी तरह कच्चा यानी कमज़ोर मन भी इंद्रियों के वश होकर और विकारों के घेरे में रहकर बरबाद हो जाता है: 'रज्जब मन मुक्ता काचे गलैं, संसार समुद्र जल दोष।'[25]

मन, माया और इंद्रियों का जाल बड़ा पेचीदा है, कोई विरला साधक ही मन को इस जाल से निकाल बाहर कर सकता है: 'तैसे मनतैं माया काढै, साधू कोई एक।'[26] जिसने इस शैतान को वश में कर लिया, समझो उसने सारे ब्रह्मांड को ही वश में कर लिया; मन को तृष्णाओं से मुक्त कर लिया और परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन कर लिए:

ब्रह्म भजै माया तजै, मन माँहीं निष्काम।
जन रज्जब ता संत सौं, प्रत्यक्ष रीझैं राम॥[27]

पर मन को वश में कैसे किया जाए?

मन के साधे सब सधै

अड़ियल घोड़े की सवारी जानलेवा हो सकती है, परंतु जब उसे साध लिया जाता है तो निश्चिंत होकर उसकी सवारी कर सकते हैं। मन का भी यही हाल है। युगों-युगों से मन में तृष्णाओं ने डेरा डाल रखा है। मन विषय-विकारों में फँसा हुआ है, इसलिए क़दम-क़दम पर मार खाता है, अपनी चंचलता के कारण हमारे मार्ग में बाधाएँ खड़ी करता है। मन को साधने के लिए सारी चंचलता का त्याग करना होगा, क्योंकि उस निश्चल परमात्मा का ध्यान निश्चल होकर ही किया जा सकता है। यदि अंतर्मुख हो जाए तो यही मन आत्मा के उत्थान के लिए सबसे बड़ा सहयोगी भी बन जाता है।

निश्चल को निश्चल ह्वै भजिये,
चंचल मति चंचल सब तजिये॥[28]

अगर तृष्णाओं को निकाल बाहर करना है तो मन को संतोष तथा संयम का पाठ पढ़ाना होगा। संत-महात्मा हमें बार-बार समझाते हैं कि माया के इस रोग की औषधि केवल रामभजन है। परमपिता परमात्मा से मिलाप करने के लिए दसों दिशाओं में फैले हुए मन को एकाग्र करके इसके मूल स्रोत तक ले जाना होगा: '*दशों दिशा मन फेरि करि, जहां उठै तहँ राखि।*'[29]

रज्जब जी एक दृष्टांत देते हुए कहते हैं कि राजस्थान में किसान अपनी फ़सल को चूहों से बचाने के लिए पारे की गोलियाँ बनाकर खेतों में डाल देते हैं। चूहे उसे खाते ही भारी हो जाते हैं और अपनी जगह से हिल नहीं पाते। इसी प्रकार मनरूपी चूहा भी हरि-नाम का पारा पीने पर अपनी उछल-कूद छोड़कर निश्चल हो जाता है:

मन मूसा पंगुल भया, पी पारा हरि नाम।
रज्जब चाल न चलि सकै, रह्या ठाँव का ठाँव॥[30]

हरि-नाम का पारा पिलाने के लिए ध्यान को समेटकर अंतर में एकाग्र करना होगा, तभी यह विषयों की मार से बच सकता है। रज्जब जी कछुए का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जब तक वह खोल से बाहर निकला रहता है, उसे मारे जाने का भय रहता है, लेकिन खोल में सिमट जाने पर वह पूरी तरह सुरक्षित हो जाता है: '*जन रज्जब दृष्टांत को, मन कच्छप दिशि जोय।*'[31] इसी प्रकार जब हमारा मन सुमिरन के द्वारा बाहरी संसार और शरीर से सिमटकर अंतर्मुखी हो जाता है, तो वह शब्द के साथ जुड़ने लगता है यानी सँभल जाता है। इससे हमारे शरीर की तामसिक वृत्तियाँ भी दूर होने लगती हैं:

उनमनि लागे मन सधै, शब्द सधै सु विचार।
रज्जब तन तामस सधै, विरला साधनहार॥[32]

मायारूपी सुमेरू पर्वत की चोटी पर पहुँचकर अर्थात् माया से ऊपर उठकर जब जीव के अंतर में प्रभु के नाम का नगाड़ा बजने लगता है तो मन वश में आ जाता है:

रज्जब शक्ति सुमेरु शिर, नाम निसान बजाय॥[33]

परमात्मा की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब मन संसार की ओर से मृत होकर माया से न्यारा हो जाता है और उसकी लिव केवल परमात्मा से जुड़ी रहती है: '*माया में न्यारा रहै, जिव जग पति मांहीं।*'[34]

जिस नाम को पाकर मन की चंचलता हमेशा के लिए दूर हो जाती है, वह ऐसा स्थायी धन है जिस पर काल का भी कोई प्रभाव नहीं होता। जैसे भूकंप आने पर भूमि पर हलचल होती है, परंतु उससे भूमि के अंदर मौजूद धातुएँ नष्ट नहीं होतीं, इसी प्रकार काल के कष्ट हमारे मन में हलचल ज़रूर पैदा करते है, परंतु इससे नाम की दौलत नष्ट नहीं हो पाती:

भाव भूमि हलचल सु ह्वै, काल कष्ट भूचाल।
धर्म धातु धक्का नहीं, जन रज्जब थिर माल॥[35]

रज्जब जी ने अपनी वाणी में काल शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया है—मृत्यु या विनाश, समय की निर्बाध गति तथा कर्मों के अनुसार जीव को फल देनेवाली वह शक्ति जिसे धर्मराज भी कहते हैं। वास्तव में काल वह शक्ति है जिससे हमारा इन तीन रूपों में वास्ता पड़ता है:

काल: मृत्यु के रूप में

परमात्मा के सिवाय जितनी भी रचना है, सब नाशवान है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश—जिन पाँच तत्त्वों से इस संसार की रचना हुई है, वे भी आख़िर नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य भी इस रचना का ही हिस्सा है, इसलिए मृत्यु के रूप में मनुष्य का विनाश भी निश्चित है। रज्जब जी कहते हैं कि एक परमात्मा के सिवाय यहाँ ऐसा कोई नहीं है जो काल और कर्मों के वश में न हो:

विनशै पंचों तत्त्व आदमी कौन है।
एक बिना जो और सबनि को गौन है॥
काल कर्म वश नांहिं सु मोहि बताय रे।
परि हां रज्जब जंत हु अंत काल पुनि जाय रे॥[36]

यह संसार काल की नगरी है, यहाँ मृत्यु का खेल लगातार चलता रहता है। इसी लिए इसे मृत्युलोक भी कहा जाता है। यहाँ दसों दिशाओं में मृत्युरूपी अग्नि की लपटें उठ रही हैं: 'दह दशि यम दीन्ही आगि।'[37] सभी को काल निगल रहा है: 'काया माया मांड सब, सकल जीव को काल।'[38] संसार की सबसे बड़ी सच्चाई यही है कि यहाँ जो कुछ भी दिखाई देता है, उसे काल अपना शिकार बनाने की ताक में रहता है। वह भूखे की तरह उसे झपटकर खा लेता है, किसी को नहीं छोड़ता:

रज्जब रहै न कोय, सब को मरना है सही।
काल कवल जग जोय, भूख भख मेल्है नहीं॥[39]

एक न एक दिन कालरूपी कोल्हू में सभी प्राणी तिलों की तरह पीसे जाएँगे: 'रज्जब कोल्हू काल के, सब तन तिली समान।'[40] हमारा यह जीवनरूपी वृक्ष लगातार कटता जा रहा है। उस पर दिन-रात काल के कुल्हाड़े के वार पड़ रहे हैं: 'आवख्या तरुवर कटै, अह निशि बहै कुहाड़।'[41] इनकी भयंकर पीड़ा से कोई नहीं बच सकता।

काल: समय की निर्बाध गति के रूप में

काल अर्थात् समय अपनी निर्बाध गति से आगे बढ़ता जाता है। हम पल-पल मृत्यु की ओर जा रहे हैं। समय के प्रवाह को रोकना हमारे वश में नहीं है। जैसे सावन में निकला हुआ इंद्रधनुष कुछ ही समय के बाद छिप जाता है या गर्म लोहे पर पड़ी पानी की बूँदें देखते ही देखते भाप बनकर उड़ जाती हैं, उसी तरह हमारा यह जीवन-काल (समय) देखते ही देखते समाप्त होता जा रहा है:

रज्जब तन तरकस तें जात है, श्वास स्वरूपी तीर।
माँगे मिलै न मोल सो, अरु ये निघटे वीर॥[42]

रज्जब जी हमें समझाते हुए कहते हैं कि शरीररूपी तरकश से श्वासों के तीर निकलते जा रहे हैं। ये श्वास न तो किसी से माँगने पर मिल ही सकते हैं और न ही मोल ख़रीदे जा सकते हैं। साँसों की यह पूँजी लगातार घटती जा रही है। 'अल्प आयु बहु विघ्न बिच, अतिगति अहमक मन्न'[43] यानी इस छोटी-सी आयु में भी हमारे अंदर बैठे हुए मूर्ख मन के कारण बहुत-से विघ्न आते हैं। रज्जब जी हमें सावधान करते हैं कि यह ज़िंदगी चार दिनों की है, यदि तुमने अभी इस अवसर का लाभ उठाकर प्रभु भक्ति द्वारा जन्म-मरण पर विजय पा ली तो तुम जीत गए। लेकिन यदि हार गए तो यह तुम्हारी सबसे बड़ी हार होगी:

अब के जीते जीत है, अब के हारे हार।
तो रज्जब राम हिं भजो, अल्प आयु दिन चार॥[44]

काल: कर्मफल का निर्णायक

इस संसार में जीव को कर्मों के अनुसार फल देने की ज़िम्मेदारी काल को सौंपी गई है। यह क़ानून ख़ुद कुलमालिक का बनाया हुआ है। काल जीवों को उनके कर्मों के अनुसार फल देते समय उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता। वह यह नहीं देखता कि उसके सामने न्याय के लिए लाया गया जीव कौन है। काल के फ़ैसले का आधार केवल कर्म होते हैं: 'काल न छोडै ज्ञान गुण, वेद पढै जो चार।'[45]

काल गुणी और वेद पढ़े हुए लोगों में कोई भेद नहीं करता। उसके पास तो किसी को कम या ज़्यादा देने का अधिकार भी नहीं है। वह तो जीवों को उनके कर्मों के अनुसार सुख-दुख भोगने के लिए अलग-अलग योनियों में भेज देता है। परमात्मा के बनाए विधान को बिना दया भाव के सख़्ती से लागू करने के कारण काल के लिए निर्दयी, क़साई आदि लफ़्ज़ों का प्रयोग किया गया है।

'दैत्य दिशावर देह निज, जीव जमपुरी बास'[46] अर्थात् हमारा शरीर काम, क्रोधादि दैत्यों का निवास-स्थान बना हुआ है जिनके कारण इसे मृत्यु के बाद यमपुरी में जाना पड़ता है जहाँ धर्मराज इसके कर्मों का हिसाब-किताब करता है। 'अंतक मुख आकार सब, यहु भोला नाहीं।'[47] अर्थात् सभी प्राणी काल के मुख में जाते हैं। वह इतना नादान नहीं कि किसी जीव को छोड़ दे। जिस जीव को संसार के साथ लगाव होता है वह मृत्यु के बाद लौटकर यहीं आता है:

प्रीति प्राणि को ले गई, काल काया ले जाय।
जन रज्जब गति आगली, अब देखी निरताय॥[48]

धर्मराज के दरबार में शुभ कर्म करनेवालों को सम्मान मिलता है और बुरे कर्म करनेवालों को दंड मिलता है। रज्जब जी कहते हैं कि जग में जीवन की यही युक्ति है और यही न्याय की नीति नौ-खंड पृथ्वी में सर्वत्र लागू है।

धरम स्थानिक बंदिये, कर्म स्थानिक दंड।
जन रज्जब यहु जग जुगति, नीति मार्ग नौखंड॥[49]

काल से बचने का एकमात्र साधन

काल के शिकंजे में फँसा हुआ जीव बुरी तरह भयभीत है; अपनी रक्षा के लिए क्या करे? इसका साधन है—हरि-सुमिरन।

रज्जब राखै मीच मन, हरि को भूलै नाँहिं।[50]

काल कसाई प्राण पशू ये, सब के शिर पर कर है रे॥
त्राहि त्राहि यहु त्रास देखकर, हरि सुमिरण को हरु है रे।
जन रज्जब जोख्यूं टारन को, एक राम को बरु है रे॥[51]

नाम के अभ्यास से जब जीव की परमात्मा से लिव लग जाती है, तो वह समय, मृत्यु और कर्मों के अनुसार फल भोगने के दायरे से ऊपर उठ जाता है: 'नाम नाज आवे नहीं, अंतक समय रु काल।'[52]

रज्जब जी कहते हैं कि इस बात को अपने मन में अच्छी तरह बिठा लो कि सतगुरु की शरण में जाने पर हमें यम के धक्के नहीं खाने पड़ते। काल की मार से बचने के लिए यही एकमात्र ओट है:

सद्गुरु सांई साधु के, शरणे धक्का नाँहिं।
काल चोट को ओट यहु, समझ देख मन माँहिं॥[53]

रज्जब जी अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं कि सतगुरु की शरण में आने से काल का दमन हो जाता है: 'उठे सब साल दयूं अरि काल'[54] सतगुरु द्वारा बताई युक्ति के अनुसार नाम-भजन करना चाहिए: 'पल-पल घटते सांसों से खालिक कीजे याद।'[55] नाम के अभ्यास से जन्म सार्थक हो जाता है: 'श्वास शब्द लागै अरथ, जन्म न जाई बाद।'[56] प्रियतम परमात्मा से उनका मिलाप हो जाएगा और काल की पकड़ से छुटकारा मिल जाएगा: 'रज्जब ल्यौ लाल हिं मिलै, लौ में काल न खाय।'[57]

6

कर्म: बंधन संसार का

दोज़ख़ माँहिं बुरों का वासा, भले बहिश्त को जाँहिं।
नरक स्वर्ग साबित हुये, सब चौरासी माँहिं॥[1]

यह जीवन केवल कर्मों का लेखा-जोखा है। चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य-योनि कर्मयोनि है, इसलिए मनुष्य कर्म करने के लिए विवश है। वह कर्म किए बिना रह ही नहीं सकता। अच्छे कर्म सुख देते हैं, बुरे कर्म दुख का कारण बनते हैं। इस तरह ये सदा जीव के साथ लगे रहते हैं: 'सुकृत सुख सुखवै सदा, कुकृत दुख दातार। अब आगे आतमकने कदे न छाड़ै लार।'[2] इस प्रकार लगातार किए जानेवाले ये कर्म ही जीव का प्रारब्ध बन जाते हैं और कर्म करना तथा फल भोगना, यह सिलसिला चलता ही रहता है।

कर्मफल निश्चित है

हमारे अपने कर्मों के अनुसार प्रारब्ध में जो कुछ लिखा होता है, उसमें किसी प्रकार की फेर-बदल, कमी या बढ़ोतरी नहीं की जा सकती। प्रारब्ध में लिखी कोई वस्तु कहीं भी हो, जीव को मिल ही जाती है, परंतु यदि कोई चीज़ हमारे भाग्य में नहीं है, तो यत्न करने पर भी वह हमें प्राप्त नहीं होती:

भगवंत भाग्य मांहीं लिख्या, सोई मिलसी आय।
ता ऊपरि ओछा अधिक, रज्जब लिया न जाय॥[3]

एक ही माता-पिता के बच्चे अपने-अपने भाग्य से बँधे होने के कारण जीवन में अलग-अलग रूप में सुख-दुख पाते हैं, यह उसी तरह है जैसे एक ही लकड़ी से बनी कंघी और खड़ाऊँ एक जैसी स्थिति में नहीं होती, कंघी को सिर पर और खड़ाऊँ को पाँव के नीचे जगह मिलती है: 'रज्जब कंघी पावड़यों, काष्ठहु लागा एक।'[4] यह सब भाग्य का ही खेल है कि दुनिया में कोई सुख भोग रहा है तो कोई दुख झेल रहा है। कर्मों के अनुसार कोई पैसे-पैसे के लिए तरसता फिरता है, जबकि दूसरा ऊँचे आसन पर विराजमान है और करोड़ों रुपयों को भी ठोकर मार देता है: 'इक कौड़ी कौड़ी को फिर ही, इक बैठे कोड़ि न लेही।'[5]

प्रारब्ध वास्तव में जीव के अपने कर्मों का फल है। जीव यदि दूसरों को सुख देता है तो बदले में स्वयं भी सुख भोगता है और यदि दूसरों को दुखी करता है, तो ख़ुद भी दुख ही पाता है: 'सुख दीन्हे सुख पाइये, दुख दीन्हे दुख होय।'[6] शरीर द्वारा किए गए कर्मों का फल शारीरिक सुख-दुख के रूप में मिलता है और दूसरे लोगों के मन को दिए सुख-दुख का फल मानसिक कष्टों के रूप में। यह शरीर तो नष्ट हो जाता है, परंतु मन के पाप शरीर के नष्ट होने पर भी समाप्त नहीं होते: 'तन तुछ जाता देखिये, रहता मन अपराध।'[7]

संसार में ऐसी कई घटनाएँ देखने में आती हैं जिनके द्वारा हमें इसका प्रमाण मिल जाता है। कभी-कभी तो हाथों-हाथ ही कर्म का फल मिल जाता है और हम दंग रह जाते हैं। मनुष्य-जन्म में किए हुए कर्म ही अगले जन्म का आधार बनते हैं। कर्मों के अनुसार फल भोगने का दृष्टांत देते हुए रज्जब जी कहते हैं:

गोला छूटा और दिशि, पंखी आया बीच।
रज्जब कहिये कौन सौं, भागों ह्वै गई मीच॥[8]

तोप से गोला छूटने पर यदि कोई उड़ता हुआ पक्षी अचानक उसके घेरे में आ जाता है तो किसी और उद्देश्य से दागे गए गोले से पक्षी भी मर जाता है। इसमें किसी का क्या दोष, पक्षी का पिछले कर्मों के कारण प्रारब्ध ही ऐसा था कि इस दुर्घटना में उसकी मृत्यु होनी थी।

इस तरह जीव के आवागमन का यह सिलसिला कभी समाप्त नहीं होता: 'तो चौरासी रज्जबा, मिटती दीसे नाँहिं।'[9] रज्जब जी कहते हैं कि परमात्मा से शिकायत करने का क्या लाभ?

> रज्जब रूठे तूठे किसी के, घटै बधै कछु नांहिं।
> राम रच्या सो होयगा, लिखा जु मस्तक माँहिं॥[10]

किसी के रूठने या ख़ुश होने से कुछ भी घटता-बढ़ता नहीं, क्योंकि प्रभु के रचे विधान के अनुसार अपने कर्मों के आधार पर ही भाग्य बनता है और वही होता है।

आशा बंधण आतमा

आवागमन के इस चक्कर में फँसे रहने का कारण, हमारी अपनी ही इच्छाएँ और अभिलाषाएँ हैं। मन के अधीन होकर यदि हम अच्छे कर्म करते हैं तो भी हमें आवागमन के चक्कर से छुटकारा नहीं मिलता, क्योंकि हम फल की इच्छा रखते हुए कर्म करते हैं। फल की आशा भी हमारे लिए कर्मबंधन बन जाती है:

> चौरासी जामण मरण, मन सु मनोरथ होय।
> बीज बिना ऊगै नहीं, जानत हैं सब कोय॥[11]

जिस जीव की सारी आशाओं का नाश हो जाता है, वह शरीर में रहते हुए भी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। जबकि फल की इच्छा रखकर कर्म करनेवाला जीव पतंग के समान होता है: 'सहकामी संसार बस, गुड़ी रूप उनहार।'[12] जैसे पतंग आकाश में उड़ने पर भी डोरी के कारण पृथ्वी पर वापस आ जाती है, उसी तरह फल की कामना रखकर कर्म करनेवाले को ऊँचे लोकों में पहुँचने पर भी इस संसार में वापस आना पड़ता है।

जिसके मन में दुनियावी पदार्थों की चाह है, वह न तो परमात्मा के बारे में जानना चाहता है, न ही अपने असली रूप की पहचान करना चाहता है। इसी लिए रज्जब जी ने चाह को विषैला काँटा कहा है। पाँव में जब

कोई विषैला काँटा चुभ जाता है तब दर्द के कारण चलना मुश्किल हो जाता है। इसी प्रकार जिसके चित्त में इच्छाओं की चुभन बनी हुई है, वह परमार्थ के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पाता:

> रज्जब काँटा चाह का, विष रूपी सु विषैल।
> सो व चुभ्या चित चरण में, रही सु गोविंद गैल॥[13]

आशाएँ जीवात्मा का ऐसा अटूट बंधन हैं, जिनसे छूटना बहुत मुश्किल है: 'आशा बंधण आतमा, मुक्त निराशा नित्त।'[14] तीनों लोकों में जीव चाहे कहीं भी चला जाए, इच्छाओं का दास बना रहता है, यहाँ तक कि स्वर्ग या पाताल में भी वह अपनी इच्छाओं का त्याग नहीं कर पाता: 'पाताल सु फाँसी ना कटै, आशा वश सब कोय।'[15]

इसके विपरीत जो अपने मन को सांसारिक कामनाओं से मुक्त कर लेता है, उस जीव को कण-कण में समाए हुए उस निराधार प्रभु का सहारा मिल जाता है: 'आशा उलझी आसिरै, निर आशा निरधार।'[16]

कर्मों से मुक्ति

संसार में कर्मों का यह व्यापार चलता ही रहता है और ऐसी हालत में प्रभु को प्राप्त नहीं किया जा सकता:

> रज्जब दीया पाइये, मार्‌या मारै आय।
> यहु सौदा संसार मध्य, साहिब लिया न जाय॥[17]

कर्मों से बँधे प्राणी बंधन-मुक्त होने की ख़ातिर यदि एक दूसरे के लिए मुक्ति का साधन बनने की आशा करें तो उससे कोई लाभ नहीं होगा: 'बाँध्या बाँधे को भजै, मुक्त हूण की आस।'[18] दुनिया का कोई भी शुभ या अशुभ कर्म हमें आवागमन के जाल से नहीं छुड़ा सकता। लेकिन कर्मबंधन से मुक्त होने का केवल एक ही उपाय है—ऐसे कर्म करना जिनसे नए कर्म न बनें और पुरानों का नाश हो। रज्जब जी का मानना है कि कर्म दो तरह के हैं—एक वह जो नए कर्मों को जन्म देता है, दूसरा वह जिसके फलस्वरूप

कोई नया कर्म नहीं बनता—यह कर्म है प्रभु के नाम का सुमिरन जो परमात्मा से मिलाप भी करवाता है और अन्य कर्मों का नाश भी करता है:

एक कर्म कर्म ऊपजै, एक कर्म कर्म जाय।
रज्जब कर्महि कर्म को, नर देखो निरताय॥[19]

नाम का सुमिरन करते-करते जब अंतर में नाम की अग्नि प्रकट हो जाती है तो कर्मों की लकड़ी क्या करेगी? वह तो जलेगी ही। नाम की इस अग्नि से पापों का ढेर जलकर राख हो जाता है: '*कर्म काष्ठ कहु क्या करे, जब प्रकटे पावक नांउ।*'[20] जिसके हृदय में परमात्मा से मिलाप की चाह को छोड़कर और कोई आशा नहीं है, वह इस बंधन से मुक्त हो सकता है।

उर औरै आशा नहीं, मिले न माया मन्न।
रज्जब मुक्ता मांड में, सुलझ्या साधू जन्न॥[21]

परंतु जीव चाहे कितनी भी कोशिश क्यों न कर ले, वह इस कार्य को अपनी करनी के बल पर कर ही नहीं सकता जब तक प्रभु दया करके सहायता नहीं करते:

जीव कृत जगदीश कने, जाया कदे न जाय।
रज्जब जब लग रामजी, आप न करे सहाय॥[22]

हृदय में जब उसके प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं तो समझो यह उसकी दया की निशानी है। रज्जब जी दृष्टांत देते हैं कि अनाज का कच्चा दाना ज़मीन में डालने से उग जाता है और अगर वही दाना भुना हो तो उगता नहीं, बल्कि उस ज़मीन में विलीन हो जाता है। इसी तरह अगर आत्मा का प्रेम कच्चा है तो वह बार-बार जन्म लेती है और यदि वह प्रेम पक्का है तो परमात्मा उसे अपने में विलीन कर लेता है:

काचा कण उगले इला, पाका पृथ्वी खाय।
त्यों ही आतम राम रुचि, नर देखो निरताय॥[23]

7

प्रेम: सच्ची इबादत

इश्क अल्लाह मलंग मन, दिल दरूंन बिच चौक।
रज्जब मंजिल आशिकां, अजब बिना लद शौक॥[1]

प्रेम मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, इसी लिए संसार में लोगों और पदार्थों से प्रेम द्वारा हमारा रिश्ता जुड़ जाता है। परंतु यह सांसारिक प्रेम वास्तव में मोह है और इस मोह में बँधे जीव की प्रीति जिससे होती है, वह अगला जन्म वहीं लेता है, इस तरह वह जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है: '*जहां प्रीति तहँ जाय जिव, भंग भये अस्थूल।*'[2]

लेकिन संत-महात्मा हमें प्रेम के असली रूप के बारे में बताते हैं जो परमार्थ का मूल आधार है। प्रेम ही प्रभु से मिलाप का साधन है। अन्य कोई कारगर उपाय हो ही नहीं सकता।

परमात्मा की हस्ती के सामने जीव बहुत तुच्छ है, उसकी हस्ती भी बेमानी है। परंतु प्रेम वह रसायन है जो जीव की निर्बलता, उसकी दुविधा को ख़त्म कर देता है और सेवक तथा स्वामी दोनों एक हो जाते हैं: '*सेवक स्वामी एक ह्वैं, आये इस घर माँहिं।*'[3] प्रेम का यह गुण है कि यह दो को एक कर देता है, उसी प्रकार जैसे अग्नि सोने के टुकड़ों को पिघलाकर एक कर देती है। प्रेम की अग्नि भी आत्मा और परमात्मा दोनों को मिलाकर एक कर देती है: '*गाल मिलावै दुहिन को, प्रेम करे यह काम।*'[4] परमात्मा हमसे कोई माँग नहीं करता, वह केवल और केवल हमारे प्रेम को ही स्वीकार करता है: '*हरि जी गाहक हेत के, नारायण लेहिं नेह।*'[5]

यह हम सबका अनुभव है कि अपने स्वार्थ पूरे करने के लिए हमारे मन में बड़ी चुस्ती-फुर्ती रहती है, परंतु परमार्थ के लिए वह लँगड़े की चाल चलने लगता है। मन में प्रभु के प्रति प्रेम भाव की कमी के कारण ही ऐसा होता है और प्रेम के बिना परमात्मा से मिलाप संभव नहीं है: *'रज्जब पहुंचे ठौर क्यों, भाव भक्ति का भंग।'*[6]

एकनिष्ठ प्रेम

हमारी आत्मा एक है, सब जगह रमा हुआ उसका प्रियतम परमात्मा भी एक है और प्रेम करनेवाला चित्त भी एक है, तो फिर दूसरा मित्र क्यों बनाया जाए? प्रभु ने प्रेम करने के लिए एक ही दिल दिया है, दो नहीं: *'दूजा दोस्त क्यों करै, दिल दीन्हे नहिं दोय।'*[7] सच्चे भक्त के मन में केवल एक परमात्मा ही समाया रहता है, तभी तो रज्जब जी कह रहे हैं कि अल्लाह के आशिक़ों को स्वर्ग-नरक से कोई लेना-देना नहीं है। उनके मन में अल्लाह को छोड़कर और कोई चाह ही नहीं है: *'एक बस्या मन माँहिं।'*[8] उन्होंने तो केवल कुलमालिक के प्रति प्रेमपूर्ण समर्पण का ही संकल्प लिया है। यही उनके लिए सच्चा सौदा है:

> *दोजख बिहिश्त हि क्या करैं, जो अलह के यार।*
> *रज्जब राजी एक सौं, कामिल इहै करार॥*[9]

ऐसे भक्तों को दर्शन देने में प्रभु भी देर नहीं करते: *'तिन सौं बाबे बेर न लाई, जो माँग्या सो दीन।'*[10] प्रेम की ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिए रज्जब जी फ़रमाते हैं कि *'रज्जब दिल के तखत सौं, और उतारो आन'*[11] यानी हमारा हृदय दुनिया भर की इच्छाओं और विचारों से भरा हुआ है, यदि हम उन्हें वहाँ से हटा दें, तभी वहाँ परमात्मा आकर बैठ सकता है।

परमात्मा का सच्चा प्रेमी उसके प्रेम से सराबोर रहता है: *'राम सौं लीना राम सौं भीना'*[12] वह अपने अंतर में नाम की मदिरा पीकर मस्त रहता है। दुनिया को पल भर के लिए भी न छोड़नेवाला मन अब नाम की मदिरा के बाज़ार में अपना डेरा डाल देता है।

लेकिन प्रेम की यह मस्ती यूँ ही प्राप्त नहीं होती। आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रियतम जीव के अंदर ही निवास करता है, फिर भी उससे मिलाप नहीं होता। हमारी ख़ुदी का भाव ही हमें परमात्मा से दूर रखता है। उसे पाने के लिए अपने सिर यानी अहंकार की भेंट देनी पड़ती है, वह प्रियतम *'शिर साटै'*[13] ही मिलता है। परमात्मा की भक्ति कई प्रकार से की जाती है, परंतु जब तक उस भक्ति में अहंकार का बीज रहता है, वह पूर्ण नहीं होती, जैसे अंगूर में मिठास होने पर भी उसका बीज स्वाद में बाधा बन जाता है। इसके विपरीत बर्फ़ का ओला बीजरहित है और पिघलकर अपने मूल रूप (जल) में आ जाता है। प्रेमपूर्ण भक्ति बेदाना है। इसमें अहंकार का बीज नहीं है। यह प्रेम की उच्च अवस्था है:

> *दाख बंदगी सब भली, बेदाना है प्रेम।*
> *रज्जब देख्या बीज बिन, जैसे ओला हेम॥*[14]

विरह बिना प्रेम न उपजे

यदि परमात्मा प्रेम का रूप है तो विरह, प्रेम की आवश्यकता है। परमात्मा को पाने की तड़प ही उस तक पहुँचने का साधन है। यही तड़प विरह है। प्रेमी यह जानता है कि वह अविनाशी प्रियतम अंदर ही है, फिर भी दोनों के बीच इतनी बड़ी दूरी है कि ख़त्म ही नहीं होती। उसके लिए दुख की बात यह है कि प्रियतम अंदर ही रहता है, फिर भी उससे मिलाप नहीं होता:

> *अंतर ही अंतर घणा, बिच ही बीच अपार।*
> *माँहीं माँहिं न मिल सकूं, दीरघ दुख करतार॥*[15]

एक और दृष्टांत देते हुए रज्जब जी कहते हैं कि परमात्मा को पाने का यह यज्ञ युगों से चलता आ रहा है जहाँ जीव पवित्र भूमि का रूप है; और विरह की व्याकुलता वह अग्नि है जिस पर प्रभु की दया घी की धारा के रूप में बरस रही है। प्रभु की दया भी निरंतर हो रही है और यह विरह की अग्नि भी निरंतर जल रही है:

आतम इल आरति अगनि, महर मेघ घिव धार।
जन रज्जब दोऊ अथक, जुग जुग यज्ञ अपार॥[16]

विरह की यह तड़प तन-मन के अहंकार को उसी प्रकार नष्ट कर देती है जैसे सूर्य के ताप से ओले देखते ही देखते गल जाते हैं: 'तन मन ओले ज्यों गलहिं, विरह सूर की ताप।'[17]

इन सच्चे आशिक़ों की मंज़िल क्या है? आप फ़रमाते हैं:

इश्क अल्लाह मलंग मन, दिल दरूंन बिच चौक।
रज्जब मंजिल आशिकां, अजब बिना लद शौक॥[18]

अल्लाह के इश्क़ में मन, मस्त फ़क़ीर बन जाए और रूह अंतर में पहुँच जाए। इस अद्‌भुत मंज़िल को हासिल किए बिना अल्लाह से मिलने का शौक़ सिर्फ़ एक ख़्याल ही रह जाता है।

विरह ही जीव की पुकार

आत्मा प्रियतम का दीदार न पाने के कारण व्याकुल होकर दिन-रात डोलती फिरती है: 'विरहनि बिहरे रैन दिन, बिन देखे दीदार।'[19] वियोग में तड़पती हुई इस विरहिणी का रज्जब जी ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है: 'म्हारो मंदिर सूनों राम बिन, विरहनि नींद न आवे रे।'[20] प्रभु-प्रियतम के बिना मेरा मनमंदिर सूना पड़ा है। मुझे नींद नहीं आती और कोई ऐसा नहीं मिला जो प्रियतम से मुझे मिला दे। आत्मा अपने स्वामी परमात्मा के दर्शन के लिए अत्यंत व्याकुल और दुखी है। मन में विरह के बाण चुभ गए हैं और मैं घायल होकर इधर-उधर घूमती रहती हूँ। यह शरीर पहले ही हड्डियों का पिंजर बन चुका था, अब विरहाग्नि की लपटों ने इसे झुलसा दिया है। ऐसे में कौन है जो मेरे प्रियतम के पास जाकर मेरा हाल सुनाए:

विरह बाण घट अंदर लागे, घायल ज्यों घूमावे रे।
विरह लाय तन पिंजर छीना, पिव को कौन सुनावे रे॥[21]

धैर्य छूटता जा रहा है और हृदय की पीड़ा बढ़ती जा रही है। आँखों से हर वक़्त आँसू बहते रहते हैं; विरह का यह दारुण दुख तन-मन को व्यथित कर रहा है। अब तो शरीर भी साथ छोड़ने लगा है: 'पिंड प्राण होत त्याग'[22] प्रभु-प्रियतम के दर्शन बिना यह पीड़ा कम नहीं होगी: 'दुखित वंत कारण कंत, परम पीर मन अधीर।'[23] जीवात्मा पुकारती है, हे प्रभु! मेरी पुकार सुन लो, अब तो प्रसन्न होकर दर्शन देने की कृपा करो, नहीं तो मेरे प्राण निकल जाएँगे: 'हरि उमंग दर्श देहु, लीजे नहिं अंत।'[24]

जुदाई का दुख सहती हुई जीवात्मा की एक ही अभिलाषा है: 'कबहुँ सो दिन होयगा, पीव मिलेगा आय।'[25] विरह-रोग को दूर करने की एक ही औषधि है—दर्शन। वह भी जानती है कि विरह की आग बुझेगी तो केवल कुलमालिक की दया से।

रज्जब रोग सु ना कटे, बिन दारू दीदार।
मुख दिखलाओ महर कर, ज्यों जीव होय करार॥[26]

वह प्रियतम से मिलाप और दया-मेहर के लिए विनती करती है कि मुझ पर अपनी प्रेमभरी दृष्टि डालकर मुझे अपने द्वार पर रख लो: 'दास हि द्वारे राखिये, हरि हित आँख्यों हेर।'[27] इस संसार में आपके सिवाय अपने अंतर की व्यथा मैं किससे कहूँ? आप कृपा करके मुझे अपने में अभेद कर लें ताकि आपके और मेरे बीच का अंतर, बीच की दूरी ख़त्म हो जाए:

बाहर कहिये कौन सौं, माँहीं मुश्किल काम।
अंतरि अंतर मेटिये, अंतर जामी राम॥[28]

जैसे भृंगी किसी दूसरे कीट को अपना रूप बना लेता है, इसमें कीट की अपनी कोई करनी नहीं होती, उसी प्रकार आप भी दया करके मुझे अपना रूप बना लें: 'भृंगी ने भृंगी करी, कीट कृत्य कछु नाँहिं।'[29]

विरह के कष्टों के बावजूद उसे आस है कि प्रियतम अवश्य मिलेंगे। क्योंकि उसके मन में प्रियतम के प्रति अटल विश्वास और पूर्ण समर्पण

का भाव है; इसे ही शरण भी कहते हैं। विरहिणी आत्मा की दुखभरी पुकार सुनकर प्रियतम अपनी रहमत की बौछार कर देता है। मिलाप का यह अवसर कितना अनमोल है। आत्मा आनंदमग्न हो जाती है; उसका रोम-रोम हर्षित हो जाता है।

जब राम सनेही आव हीं,
तन मन मंगल होय परम सुख, आनन्द अंग न मावहीं।...
जन रज्जब जगदीश दया करि, परदा खोलि खिलाव हीं॥[30]

8

शरण

शरणा लीजे साधु का, शरणा गहि गुरु पीर।
रज्जब खांडा लाख का, रहै म्यान में वीर॥[1]

आजीवन दूल्हे के वेश में

अपने गुरु दादू दयाल जी की आज्ञा से रज्जब जी सारी ज़िंदगी दूल्हे के वेश में रहे। जब दादू दयाल ने रज्जब जी से कहा, 'जिसमें पाया उसी में रहो। यह वेश मुबारक समझो।' तब गुरु की आज्ञा स्वीकार करके जीवन भर रज्जब जी दूल्हा ही बने रहे, वही वर की पोशाक पहने रहे जिसमें दादू दयाल जी के पहली बार दर्शन किए थे। एक बार पालड़ी में सत्संग करने के बाद दादू जी महाराज अपने शिष्यों के साथ मार्ग में भक्तजनों को दर्शन देते हुए कड़ेल नामक गाँव के पास पहुँचे। वहाँ कुछ प्रेमीजनों ने रज्जब जी से कहा कि अब तो आपको दूल्हे का वेश त्यागकर संतों के अनुरूप वेश धारण कर लेना चाहिए। अब आपकी जो अवस्था है, उसमें इस सुंदर वेशभूषा की इच्छा होनी भी नहीं चाहिए।

अपने गुरुभाई प्रेमीजनों का यह परामर्श सुनकर रज्जब जी ने कहा, 'मैं सुंदरता के लिए यह वर-वेश धारण नहीं करता हूँ, चूँकि इसी वेश में मुझे सतगुरु और तत्त्व की प्राप्ति हुई थी, इस कारण मैं इस वेश का त्याग नहीं करूँगा और इसके लिए मुझे कोई परेशानी भी नहीं उठानी पड़ती।'

अन्य शिष्यों के मन में बनी इस धारणा को दादू जी दूर करना चाहते थे। एक दिन जब वह अपने शिष्यों सहित बस्सी नामक गाँव में सत्संग

करने जा रहे थे तो मार्ग में एक नाला आया। अत्यधिक कीचड़ होने के कारण नाले को पार करना आसान नहीं था। तब दादू जी ने शिष्यों से नाले में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर कुछ पत्थर डालने को कहा ताकि उन पर पैर टिकाकर नाले को पार किया जा सके। शिष्य पत्थरों के लिए इधर-उधर ताकने लगे, परंतु रज्जब जी तुरंत कीचड़ में जाकर लेट गए और हाथ जोड़कर दादू जी से विनती की, 'आप मेरे शरीर पर अपने चरणकमल रखकर धीरे-धीरे नाले को पार कर लीजिए। आपके चरण मेरे शरीर पर पड़ने से मेरी देह पवित्र हो जाएगी।' रज्जब जी का ऐसा अनूठा प्रेम देखकर दादू जी ने अपने शिष्यों से कहा, 'देख लो, अगर रज्जब का वर-वेश से लगाव होता तो वह अपनी पोशाक उतारकर ही कीचड़ में प्रवेश करता परंतु उसने ऐसा नहीं किया।' तब दादू जी ने रज्जब को कीचड़ से उठाया और रज्जब जी ने हाथ जोड़कर आदर सहित गुरु को प्रणाम किया। यह सब देखकर शिष्यों के मन में बनी हुई यह धारणा कि रज्जब जी शौक़ीन होने के कारण तथा शिष्यों और भक्तों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए दूल्हे का तड़क-भड़कवाला वेश सदा धारण किए रहते हैं, सदा के लिए दूर हो गई। वे रज्जब जी की सच्ची गुरुभक्ति के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो गए, उन्हें अपनी भूल का एहसास हो गया।

रज्जब जी अपनी वाणी में कहते हैं—हे प्रभु! मुझसे वही कार्य करवाएँ जिसका मेरे गुरु ने मुझे हुक्म दिया है, क्योंकि उनकी कही बातें ही मेरे मन को अच्छी लगती हैं। मैं आपसे यही भीख माँगता हूँ कि आख़िरी साँस तक गुरु की दिखाई राह पर चलता रहूँ और उनके द्वारा बताई गई मर्यादा का पालन करता रहूँ। यही सच्ची शरण है:

गुरु का कह्या करावहु सांई, ये बातैं मेरे मन भाई॥
गुरु की आज्ञा में मन राखो, दीन दयालु दूर मत नाखो॥
गुरु की सीख सन्मुखा कीजे, समर्थ साहिब यहु दत दीजे॥...
गुरु की गति मति मांहीं मारी, रज्जब मांगे भीख भिखारी॥[2]

सतगुरु दादू जी के देहावसान का वृत्तांत भी रज्जब जी की गहरी गुरुभक्ति का प्रमाण है। जिस प्रकार दादू दयाल जी से प्रथम साक्षात्कार रज्जब जी के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण और हर्षपूर्ण घटना थी, वैसे ही दादू जी का देहावसान उनके लिए अपार दुखदायी घटना थी। अपने सतगुरु का वियोग उनके लिए असहनीय था। उनके कई पदों में उनकी विरह वेदना प्रकट हुई है:

तन मन दुखी जु फेरि सँवारे। अंतर्द्धान भये गुरु प्यारे॥
जन रज्जब रोवे दुख आदू। परम पुरुष विछटे गुरु दादू॥[3]

कहते हैं कि दादू जी के देहावसान के बाद रज्जब जी ने अपने नेत्र बंद कर लिए। अब उन्हें गुरु के बिना सारा संसार सूना प्रतीत होने लगा था। निरंतर आँखें बंद किए वह अपने सतगुरु दादू दयाल जी की याद में, प्रभु के स्मरण में और ध्यान की अवस्था में रहने लगे। ज़रूरत पड़ने पर ही आँखें खोलते थे, वरना बंद ही रखते थे।

शरण किसकी लेनी है?

शरण लेने का अर्थ है—गुरु पर अटूट विश्वास और प्रेम के साथ गुरु के हुक्म का पालन करना। गुरु की पूर्ण शरण लेना ही मुक्ति का एकमात्र साधन है।

जीव को केवल वही शक्ति इस संसार से मुक्ति दिला सकती है जो स्वयं अविनाशी हो, जिससे बड़ी और कोई दूसरी ताक़त न हो और वह है परमात्मा की जीवनदायी शक्ति 'शब्द'। सतगुरु 'शब्द' का साकार रूप होते हैं: *'रज्जब सद्गुरु शब्द मय, शब्द गहैं निज ठाम।'*[4] इसलिए सतगुरु की शरण लेने में ही हमारा हित है। जब तक हमारे सिर पर सतगुरु का दया-मेहर का हाथ है और हमारे हृदय में प्रभु का वास है: *'गुरु दादू का हाथ शिर, हृदय त्रिभुवन नाथ'*[5] तब तक हमें किससे डरने की ज़रूरत है? *'रज्जब डरिये कौन सौं'*[6] एक उदाहरण द्वारा रज्जब जी कहते हैं कि

तलवार की क़ीमत चाहे लाख रुपये भी क्यों न हो, फिर भी उसे म्यान की ज़रूरत पड़ती है।

शरणा लीजे साधु का, शरणा गहि गुरु पीर।
रज्जब खांडा लाख का, रहै म्यान में वीर॥[7]

शरण कैसे लेनी है?

शरण लेनेवाला शिष्य जब तक अपने अहंकाररूपी सिर को सतगुरु के चरणों में समर्पित नहीं करता और तन को अभ्यास में स्थिर नहीं करता, अपनी आशा, अपनी इच्छा को गुरु की इच्छा में विलीन नहीं कर देता, तब तक वह अपने अंतर में विराजमान परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता:

जब लग शिर डारै नहीं, तजे न तन की आस।
तब लग राम न पाइये, जन रज्जब सुन दास॥[8]

वृक्ष का बीज ज़मीन के अंदर पहुँचकर जब उस मिट्टी में अपनी हस्ती मिटा देता है, तभी वह अंकुरित होकर वृक्ष बनता है, यही स्थिति शरण लेनेवाले शिष्य की होती है–'*गात गर्द में देय।*'[9] जो शिष्य अपने जीवन को सतगुरु के उपदेश के अनुसार ढालता है वही गुरुमुख है: '*शिष्य सही सोई भया, रहै सीख में जोय।*'[10]

वह वफ़ादार कुत्ते की तरह अपने सतगुरु का दर कभी नहीं छोड़ता: '*श्वान सबूरी अति भली*'[11] शरण में आकर जब शिष्य अपना सब कुछ समर्पित कर देता है तो सतगुरु भी कुछ छिपा के नहीं रखता, बल्कि सारी रूहानी दौलत शिष्य को सौंप देता है: '*रज्जब अज्जब काम है, शिर सांई को देहु*'[12] और '*सर्वस्व दे सर्वस्व लिया, शिष सद्गुरु कने आय।*'[13]

शरण में आया गुरमुख हुक्म के अनुसार हर दम नाम के सुमिरन में लगा रहता है: '*रज्जब रहिये रजा में, साधु शब्द शिर धार।*'[14] जीते-जी मरनेवाला इस मीठे फल को चखनेवाला ही सही अर्थ में गुरुमुख है: '*संतो मरणै मंगल मीठा, सो गुरु मुख विरले दीठा।*'[15] सतगुरु हमेशा ऐसे शिष्य

के अंग-संग रहते हैं। ऐसे शिष्य की जीवन डोर सतगुरु के हाथ में रहती है। उसे प्रभु जैसे रखता है, वह वैसे ही रहता है:

बाजीगर की पूतली, बाजीगर हाथै।
रज्जब राखै त्यों रहै, नहिं अवगुण साथै॥[16]

जा दिन ज्यों राखे प्रभू, ता दिन त्यों रहिये।
रज्जब दुख सुख आपणाँ, काहू नहिं कहिये॥[17]

रज्जब रहिये रजा में, साधु शब्द शिर धार।
मन वच कर्म कारज सरैं, कदे न आवै हार॥[18]

रज्जब जी ने स्पष्ट कर दिया है कि शरण का मतलब है हुक्म में रहना:

रज्जब रहिये रजा में, गुरु गोविन्द हजूर।
इनकी आज्ञा मेट तैं, देखत पड़िये दूर॥[19]

परंतु कुछ ऐसे भी लोग हैं जो मन की शरण लेकर मन के मुरीद बन जाते हैं।

मन का मुरीद मनमुख

जो जीव परमात्मा को पाने के लिए मन के बनाए बाहरमुखी साधनों में, कर्मकांड में उलझा रहता है वह मनमुख कहलाता है। मनमुख का ध्यान बाहर संसार के असंख्य पदार्थों में फैला रहता है, जबकि गुरुमुख का ध्यान हमेशा अपने शरीर के अंतर में लगा रहता है: '*गुरु मुख बासा पिंड में, मन मुख ह्वै ब्रह्मंड।*'[20] गुरुमुख सतगुरु की संगति करके जाग्रत हो जाता है, जबकि मनमुख मूर्खता के कारण अपने अंतर में विद्यमान रूहानियत के ख़ज़ाने को गँवा देता है: '*गुरुमुख गुरु संगति से जागै, मन-मुख मूढ महा निधि त्यागै।*'[21]

मनमुख लोग अंतर में वास करनेवाले परमात्मा की खोज दूर-दूर तीर्थों पर जाकर करते हैं; जल और पत्थरों की पूजा करते हैं:

हरि घर मांहीं छाड करि, परदेश जाय प्राण।
जन रज्जब सोधी बिना, पूज हि जल पाषाण॥[22]

मनमुख यह विश्वास करता है कि सरोवरों तथा नदियों में नहाने से उसके पापों की मैल दूर हो जाएगी। परंतु मैल तो मन पर चढ़ी हुई है, आत्मा संसार में किए हुए कर्मों की मैल से ढकी हुई है; यह मैल किसी सरोवर के जल से कैसे दूर हो सकती है? केवल तीर्थ-स्थानों पर भटकने से उद्देश्य पूरा नहीं होता। यह तो वैसा ही है जैसे 'बहुते चलैं विचार बिन, ज्यों घाणी का बैल। जन रज्जब चारों पहर, कटी कोस नहिं गैल॥'[23] कोल्हू से बँधा बैल बिना सोचे समझे सारा दिन चलता रहता है, परंतु कई मील चलने पर भी वहीं का वहीं रहता है:

तन धोया फिर तीरथों, मैल रह्या मन मांहिं।
रज्जब पातक प्राण में, क्यों उर के अघ जांहिं॥[24]

जितने भी मनमुखी साधन या भेष हैं वे परमात्मा की प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं हैं। रज्जब जी समझाते हैं कि यदि तिलक लगाने से ही अंतर का सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाए या माला फेरने से परमात्मा मिल जाए, फिर तो परमात्मा से मिलना बहुत आसान खेल हो जाए:

जे तत्त्व प्राप्ति तिलक में, माला पहर्‌यों मेल।
तो रज्जब परसे पीव सब, सहज भया यहु खेल॥[25]

इसी तरह सिर यदि मुँड़वा लिया जाए, फिर भी कामवासना तो मन में समाई हुई है। जब तक मन के कामवासनारूपी बालों को नहीं मूँड़ा जाता, सिर मुँड़वाने से कोई फ़ायदा नहीं हो सकता:

शिर मूंड्या अस्थूल का, काम जड़या मन मांहिं।
रज्जब मन मूंडे बिना, शिर मूंडे कछु नांहिं॥[26]

मूर्ति पूजा के बारे में रज्जब जी कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति बेजान है। जिसको आग और पानी नुकसान पहुँचा सकते हैं, वह हमारी रक्षा कैसे कर पाएगी? वह कहते हैं कि हम उस मूर्ति को प्रभु कैसे मानें जिसको सुनार और कारीगर ने गढ़ा है: 'रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान।'[27] वे उस परमात्मा से बेख़बर हैं, जिसे न तो किसी ने गढ़कर बनाया है और न ही जिसका कोई मोल ही दिया जा सकता है।

एक परमात्मा के भजन के सिवाय कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है: 'भगवंत भजन बिन कुछ नहीं, भेष भरम दे नाँखि।'[28] वास्तव में मन की मैल को धोने और उसे पवित्र करने की ज़रूरत है। इसके लिए तीन तीर्थ हैं—सत्य, संयम और सुमिरन।

तन को तीरथ बहुत है, मन को तीरथ तीन।
सत जत सुमिरण सलिल शुध, रज्जब काढे बीन॥[29]

संत-महात्माओं ने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कई तरह से सेवा करने की हिदायत दी है।

9

सेवा करे सो बंदगी

रज्जब सेवा बंदगी, दिल दासा तन होय।
सद्गुरु सांई साधु सुर, ताके वश सब कोय॥[1]

परमार्थ में सेवा का विशेष महत्त्व है। गुरु की शरण में आकर जीव जब परमार्थ के मार्ग पर आगे बढ़ने लगता है, तो उसका मन के साथ संघर्ष शुरू हो जाता है। जब तक मन में निर्मलता और नम्रता नहीं आ जाती, तब तक आंतरिक अभ्यास में प्रगति नहीं होती। मन को वश मे करने के लिए त्याग या कठिन साधनाएँ कभी कारगर साबित नहीं हो सकतीं, बल्कि इनसे अहंकार की भावना आ जाती है: '*विविध भाँति वित बंदगी, कठिन करी नहिं जात।*'[2] रज्जब जी के समय की घटना है कि एक साधु उनके पास आया और अपनी त्यागवृत्ति की ख़ुद ही तारीफ़ करने लगा। उसने कहा कि हम न तो पैरों में जूता धारण करते हैं और न दूसरों से रुपया-पैसा ही लेते हैं, हमारे जैसा त्यागी तथा प्रभु-प्रेमी और कौन हो सकता है! तब रज्जब जी ने उसके अहंकार को दूर करने के उद्देश्य से कहा:

पशु भी पैसा नहिं गहे, नहिं पहिने पैजार।
'रज्जब' ऐसे त्याग से मिलें न सिरजनहार॥[3]

अर्थात् पशु भी पैसा नहीं लेते, वे भी पैरों में जूते नहीं पहनते। ऐसे त्याग से तो प्रभु नहीं मिल सकता।

सच्चे भक्त के हृदय में प्रेम और नम्रता के गुण होना बहुत ज़रूरी है। इन गुणों के अभाव में वह कभी भी परमात्मा की भक्ति के योग्य नहीं बन सकता, क्योंकि परमात्मा स्वयं प्रेम का रूप है। सेवा ही एक ऐसा साधन है जिससे मन में भक्ति भाव के साथ-साथ दीनता का भी भाव आता है, ऐसा सेवक संतों को प्यारा लगता है; ख़ुद कुलमालिक भी उसके वश में हो जाता है। रज्जब जी कहते है:

अन्तर्यामी गर्भ गति, साधु सुन्दरी माँहिं।
रज्जब जाये एक के, दोन्यों पोखे जाँहिं॥[4]

जैसे बच्चा माँ के गर्भ में रहता है, परमात्मा संतों में निवास करता है। जैसे माँ को खाना खिलाने से बच्चे का पोषण भी होता है, उसी तरह संतों की सेवा से परमात्मा की भक्ति भी होती है। इसलिए सतगुरु की सेवा में लगना ही सबसे बड़ी भक्ति है और गुरुभक्ति ही सबसे बड़ी सेवा है:

रज्जब सेवा बंदगी, दिल दासा तन होय।
सद्गुरु सांई साधु सुर, ताके वश सब कोय॥[5]

रज्जब सेव पियारी साँइयाँ, सेवा के वश साध।
जीव सीव सेवा रचे, सेवा महल अगाध॥[6]

महा मोहनी बंदगी, मोहे सांई साध।
रज्जब महिमा क्या कहै, सेवा सदन अगाध॥[7]

परमात्मा ने हमें यह जीवन सेवा-कार्य के लिए ही दिया है। वास्तव में कुलमालिक की दया से प्राप्त धुरकर्मों के जाग्रत होने पर ही जीव सेवा में लगता है: '*परम अंकूर प्राणि में जागे, परम पुरुष की सेवा लागे।*'[8] अन्य संत-महात्माओं की तरह रज्जब जी ने चार प्रकार की सेवा बताई है: तन की सेवा; धन की सेवा; मन की सेवा और भजन-बंदगी की सेवा।

तन की सेवा

पहिले तन करि बंदगी, पीछै मन गहि मूल।
रज्जब राचौ राम सौं, जैसे सूरज फूल॥[9]

पहले शरीर से सेवा करो। तन की सेवा से विनम्र होकर मन सच्ची सेवा यानी भजन-बंदगी की ओर मुड़ेगा जो सब सेवाओं का मूल है। धीरे-धीरे मन प्रभु-प्रेम से भरकर ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेता है जैसे सूरजमुखी फूल की होती है, जो सूरज के उदय होने पर खिल जाता है। दूसरे लोगों के साथ मिल-जुलकर सेवा करने से हम ख़ुद को दूसरों से बेहतर नहीं समझते। इस तरह हमारे अंदर नम्रता का, दीनता का भाव आने लगता है; अहंकार का नाश होने लगता है, हृदय संतोष से भर जाता है। हमें किसी भी बात का अभाव नहीं सताता। इसी लिए रज्जब जी ने सेवा को बहुत मूल्यवान बताया है:

सेवा सोना सोलहां, निपजै तन मन माँहिं।
यहु प्राणी खित खानि यहु, तिहिं घर टोटा नाँहिं॥[10]

धन की सेवा

धन को सेवा कार्य में लगाने से धन का मोह दूर हो जाता है। सभी संत-महात्मा अपने शिष्यों को अपनी कमाई का दसवाँ हिस्सा परमार्थ के कार्यों में ख़र्च करने की हिदायत देते हैं। रज्जब जी ने भी यही हिदायत देते हुए कहा है:

हरि हित दशवंध खर्च तों, आवे दशा सु द्वारि।
रज्जब राजा चोर यम, ले हर सके न मारि॥[11]

अर्थात् अपनी कमाई के सौ में से दस परमार्थ में ख़र्च करने से जीव की अवस्था में सुधार होता है। वह संसार में सदा आनंद भोगता है। इस सुख और आनंद को न राजा छीन सकता है, न चोर चुरा सकता है

और न ही यम नष्ट कर सकता है। वही धन सार्थक है जिसका उपयोग जीव अपने हाथों से परमार्थ के लिए करता है: '*रज्जब रिधि तेती रही, जु हरि हित खरची हाथ।*'[12] हिंदुओं की आस्था है कि परमार्थ के लिए की जानेवाली धन की सेवा परलोक के मार्ग में सहायक होती है और मुसलमानों का विश्वास है कि ख़ैरात आगे के रास्ते के लिए खाना है:

संबल सुकृत तौशा खैर, रज्जब कह्या सु नाहीं गैर।
खर्च खजाना पुण्य कर हाथ, जो वित चलै जीव के साथ॥[13]

इस तरह स्पष्ट है कि जो धन अपने हाथ से पुण्य-कार्यों में ख़र्च होता है वही साथ जाता है। सेवा कोई भी हो सदा दूसरों की ख़ुशी के लिए, उनकी सहायता के लिए की जाती है। धन की सेवा भी जब दूसरों के हित और ख़ुशी के लिए की जाती है तो उसका प्रभाव अद्भुत होता है:

चार पहर संतोष ह्वै, पेट भरे निज अंग।
परमारथ पर को दिये, भूख सदा की भंग॥[14]

अपनी भूख शांत करने से केवल चार पहर के लिए अर्थात् कुछ समय के लिए संतोष होता है, परंतु परमार्थ में धन लगाने से विषय-भोगों की कामना ख़त्म हो जाती है और जीव सदा के लिए संतुष्ट हो जाता है।

वास्तविकता तो यह है कि सर्वस्व प्रभु का दिया है, जीव को अपनी धन-संपत्ति उसकी अमानत समझकर इस्तेमाल करनी चाहिए। इसी में उसकी भलाई है। जब तक मन की यह अवस्था नहीं हो जाती कि वह इस सत्य को पहचान ले, तब तक जीव को कम से कम कमाई का दसवाँ हिस्सा परमार्थ के लिए अवश्य ख़र्च करना चाहिए: '*सर्वस्व दीजे तो भला, नहिं तो दशवंध काढि।*'[15]

मन की सेवा

संतों द्वारा बताई गई रहनी के मुताबिक़ जीना और मन को संसार से मोड़कर अंतर्मुख करना मन की सेवा है। यह सेवा नाम के सुमिरन द्वारा होती है:

सुमिरन सेवा मूल है, सब सुकृत श्रृंगार।
रज्जब शोभा सकल की, देखो सुमिरन हार॥[16]

साँची सेवा बंदगी, जापरि रीझै राम।
दर्श परस दासों मिलै, सेवक सीझै काम॥[17]

जब जीव मन को एकाग्र करके पूरी लगन से उस परमात्मा का सुमिरन करता है तो प्रभु प्रसन्न होकर उस पर कृपा क्यों नहीं करेंगे: 'एक मना दृढ़ एक सौं, तो क्यों न निवाजे देव।'[18] मन श्रद्धा और भक्ति भाव से भरपूर हो जाए तो साधक गुरु-गोविंद से कभी दूर नहीं होता, उसके हृदय में दूसरा कोई नहीं होता: 'सेवक मिले न बीछुड़े, जब दिल सेवा माँहिं। रज्जब रच्या सु बंदगी, एक दूसरा नाँहिं॥'[19] रज्जब जी उस जीव को बड़ा भाग्यवान मानते हैं जो सेवा भाव द्वारा अपने चंचल मन को अनंत प्रेम और भक्ति से भर देता है:

भाव भक्ति के भवन में, गुरु गोविन्द ह्वै साध।
जन रज्जब बड़ भाग भृत, यहु मन महल अगाध॥[20]

भजन की सेवा

जीव का लक्ष्य है: परमात्मा से मिलाप। तन, मन, धन की सेवाएँ अच्छा माहौल बनाती हैं, किंतु उनसे लक्ष्य प्राप्त नहीं होता।

रज्जब जी कहते हैं कि अंतर में ध्वनि को सुनना ही जीव की असली सेवा है जो उसे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करवाती है: 'सेवक सेवा मांहिं समावे, सो फिर योनी द्वार न आवै।'[21]

आपने इसे भजन की सेवा कहा है: 'राम नाम की गर्ज सुन'[22] 'यहु अवसर बहुर्‌यों नहीं, मन सुन ध्वनि लाई।'[23] रज्जब जी ने स्वीकार किया है कि 'कठिन काम भजन राम'[24] लेकिन इस सेवा से ही अंतर में परमात्मा का दीदार होता है—'मेला आतम राम भजन करि होत है।'[25] और 'सेवा कर हाजर हुआ, सेवा हाजर होय।'[26]

इस सच्ची सेवा में लगा हुआ साधक धीरे-धीरे द्वैत भाव से ऊपर उठ जाता है—'दूजी दिल व्यापे नहीं, जिहिँ हिरदय हरि आन।'[27] उसकी अवस्था ऐसी हो जाती है कि वह हर काम सतगुरु का ही समझकर करने लगता है। वह इस रहस्य को जान जाता है कि इस सेवा द्वारा ही उसका प्रभु से मिलाप हो सकता है:

ब्रह्म बंदगी में सदा, सेवा में सब सिद्ध।
खिदमत में अजमत रहै, रज्जब पाई विद्धि॥[28]

सेवा कैसे की जाए?

नि:स्वार्थ भाव से दूसरों की सहायता करना ही सेवा है। अगर सेवा के बदले में कुछ पाने की इच्छा आ जाए तो वह सेवा नहीं रहती। मन जब इस प्रकार हिसाब-किताब करने लगता है तो ऐसी सेवा से कुछ भी परमार्थी लाभ नहीं। सेवा वह है जो सहज रूप से अंतर की प्रेरणा से की जाए। ऐसी सेवा के लिए रज्जब जी ने कहा है:

रज्जब बैठी बंदगी, बंदे के दिल माँहिं।
सेवक सेवा में गरक, सो फल चाहै नाँहिं॥[29]

सेवा करते हुए मन में अभिमान और स्वार्थ का भाव बिलकुल नहीं होना चाहिए। सेवा परमात्मा को हाज़िर-नाज़िर मान कर करनी है, तभी रूहानी दौलत हासिल होगी:

खिदमत करि इकतार, खड़े रहो खालिक दरबार।
खानि खजाना खीसे मांहिं, जे सेवा उर खोटी नांहिं॥[30]

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। प्रभु-प्राप्ति की चाह से परमार्थ के मार्ग पर चलते हुए जीव जो भी सेवा-कार्य करता है, परमात्मा उसका फल अवश्य देता है। जब इस संसार में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की सेवा करने पर लाभ प्राप्त करता है, तो फिर कुलमालिक परमात्मा की सच्ची सेवा करने पर भला जीव को क्या कमी हो सकती है:

'जो रज्जब राम हिं भजे, तिन के टोटा कौन।'[31] लेकिन अगर सेवा प्रेमपूर्वक की जाए तभी पूरी तरह से सार्थक है। जैसे प्राणों के बिना शरीर का कोई महत्त्व नहीं है, वैसे ही प्रेम के बिना की गई सेवा पूरा फल नहीं देती:

विविध बंदगी वपस् विधि, प्रेम प्राण की ठौर।
जन रज्जब तिस जीव बिन, सब गुण मृतक हि और॥[32]

सेवक कैसा होना चाहिए? सेवक की पहचान क्या है? रज्जब जी ने बड़े सरल शब्दों में यह गहन बात कही है कि जो सेवक गुरु की आज्ञा में रहता है वही सेवक सतगुरु को भाता है। जो सेवक अपनी ख़ुशी को ध्यान में रखता है वह अपने सतगुरु से दूर हो जाता है जबकि हुक्म में रहनेवाला सेवक सदा सतगुरु की हाज़िरी में रहता है:

भेज्या जाय बुलाया आवे, सो सेवक साहिब मन भावे।
अपणी खुशी पड़ेगा दूर, हुकम माँहिं हाजिर सु हुजूर॥[33]

संसार में बहुत-से लोग चाहकर भी सेवा नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें इसका अवसर ही नहीं मिलता:

बाबा देय न बंदगी, बंदे करहिं विलाप।
तो सेवा सम को नहीं, जापरि झगड़ै आप॥[34]

इसलिए वे जीव भाग्यशाली हैं जिन्हें सेवा का अवसर प्राप्त होता है। लेकिन सेवा का अवसर भी परमात्मा ही देता है और स्वयं ही सेवक के अंतर में बैठकर सेवा की प्रेरणा भी देता है:

विविध भांति की बंदग्यों, बहु सेवक लाये।
साहिब सब में पैसिकर, सब ठौर रजाये॥[35]

10

रहनी कैसी हो?

करणी कठिन सु बंदगी, कहणी सब आसान।
जन रज्जब रहणी बिना, कहां मिलैं रहमान॥[1]

एक बार रज्जब जी अपने गुरु-भाइयों के साथ किसी भक्त शिष्य के आग्रह पर उसके घर पर भोजन करने जा रहे थे। रास्ते में एक भूखे ग़रीब व्यक्ति ने उनसे विनती की कि वह भी उनके साथ जाकर भोजन करना चाहता है। रज्जब जी ने उसे अपने साथ ले लिया और सबके बीच में उसे अपने पास बैठाकर भोजन करने लगे। उसकी दीन-हीन दशा तथा मैले-कुचैले कपड़े देखकर वहाँ बैठे अन्य लोगों ने उसे बाहर एक तरफ़ बैठाकर भोजन कराने को कहा, परंतु रज्जब जी को यह बात अच्छी नहीं लगी। सबके विरोध के बावजूद उन्होंने उसे अपने पास बैठाकर ही प्रेमपूर्वक भोजन कराया:

दया करन में दयालु को, भय प्रतिपक्ष न होय।
पास बिठाया दीन को, रज्जब सूनी न कोय॥[2]

रज्जब जी ने अपनी वाणी में भी रहनी पर विशेष चर्चा की है। उन्होंने छुआछूत, जाति-पाँति के भेदभाव से परे सभी मनुष्यों को एक समान, एक ही परमात्मा की संतान के रूप में देखने की हिदायत दी है और वह साफ़ शब्दों में कहते हैं कि हम भेदभाव केवल अज्ञानता के कारण करते हैं:

सब के नख-शिख एक विचारा, एक हि सब का सिरजन हारा॥
गुरु के ज्ञान मांहिं सब एकै, रज्जब अंध अज्ञान अनैकै॥[3]

दया धर्म का मूल

दया ही धर्म का आधार है और यदि मनुष्य के हृदय में दया का भाव नहीं है तो समझो कि उसका जीवन व्यर्थ है:

दया धर्म जो दिल में नाँही, गहला ज्ञान अज्ञान्यों माँहीं।
यूं आगे को होय न सामा, रज्जब आय गया बेकामा॥[4]

जिसके मन में करुणा है, वह किसी को भी कष्ट नहीं पहुँचा सकता। इसी लिए रज्जब जी सीधे-सरल शब्दों में सीख दे रहे हैं कि संसार में किसी भी प्राणी को चोट पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि वैर से वैर ही बढ़ता है। इसके विपरीत जिसका किसी से वैर-विरोध नहीं है, उसका कोई वैरी नहीं रहता। संसार के सभी प्राणी उसके अपने हो जाते हैं:

चोट न काहू को करै, तो चोट न इसको होय।
जन रज्ज्ब निर्वैर सौं, वैर करे नहिं कोय॥[5]

जीवन में शांति तथा आनंद प्राप्त करने के लिए ख़ुद से एक वादा करना होगा कि हम कभी किसी का दिल न दुखाएँ। ऐसा करने से हम इस संसार में भी ख़ुशी हासिल करेंगे और हमारा परमपिता परमात्मा भी हमारे ऐसा करने से प्रसन्न होगा:

रज्जब अज्जब काम है, जो दिल न दुखाया जाय।
यहां खलक उस पर खुशी, आगे खुशी खुदाय॥[6]

मांसाहार की मनाही

भिन्न-भिन्न शारीरिक रचना के कारण जीवों में तत्त्वों की मात्रा अलग-अलग है, परंतु सभी जीवों में परमात्मा का अंश यानी आत्मा विद्यमान है, जैसे कि

वनस्पति में एक तत्त्व, कीड़े-मकौड़ों में दो तत्त्व, पक्षियों में तीन तत्त्व, पशुओं में चार तत्त्व हैं, जबकि मनुष्य में पाँचों तत्त्व मौजूद हैं। इस तरह यदि हम किसी प्राणी के शरीर को नष्ट करते हैं तो उसकी जीवात्मा को भी कष्ट होता है। एक को हानि पहुँचाने से दोनों की ही हानि होती है। इसलिए किसी जीव पर हिंसा करने या उसकी बलि चढ़ाने से प्रभु कैसे प्रसन्न हो सकता है?

तन मंदिर मूरति मधि आतम, फोड़े फूटे दोय।
उभय उजाड़ एक के कीजे, खसम खुशी क्यों होय॥[7]

रज्जब जी ने संत-महात्माओं के दृष्टांत देकर बार-बार हमें अनाज, फलों और शाक-सब्ज़ियों पर गुज़ारा करने की सलाह दी है:

जौ की रोटी भाजी सेती, मुहमद उमर गुजारी।...
ऋषि रहते जंगल जाय बैठे, झड़े पड़े फल खाये।
जठर अग्नि जुगति सौं टाली, जीव न जगत सताये॥[8]

ऋषि-मुनि भी जंगल में रहकर पेड़ों से अपने आप नीचे गिरनेवाले फल ही खाते थे। इसी युक्ति से वे अपनी भूख को शांत करते थे। उन्होंने कभी भी जगत के जीवों को नहीं सताया।

रज्जब जी यहाँ एक अद्भुत सिद्धांत की चर्चा कर रहे हैं कि सब प्राणी 'सगौती' अर्थात् समान गोत्र के, एक ही वंश के हैं।

नाम सगौती बोलिये, कहिये ते मा अंश।
सो रज्जब क्यों खाइये, प्रत्यक्ष अपना वंश॥[9]

जब हम सब प्रभुरूपी माँ के ही अंश हैं तो अन्य जीवों के मांस और हमारे मांस में क्या फ़र्क़ है: 'गोस्फंद गो मेष माजूर, हमशीर सब भाई।'[10]

बकरी, गाय, भेड़–ये सभी लाचार जीव हमारे ही सगे भाई-बहन हैं। इससे भी अहम बात यह है कि सभी जीव रब का ही रूप हैं, इसलिए कभी किसी का गला नहीं काटना चाहिए: 'सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट।'[11] कहने को तो सभी कहते हैं कि कुलमालिक सभी प्राणियों में निवास करता है, परंतु फिर भी वे जीवों का मांस खाते हैं। यहाँ रज्जब जी ने करारी चोट करते हुए कहा है:

पंच वक्त जो बांग दे, वह तो दीनी यार।
सो मुरगा क्यों मारिये, काजी करो विचार॥[12]

अगर हम किसी को ज़िंदगी नहीं दे सकते, तो हमें उसे मारने का भी कोई हक़ नहीं है। यदि हम किसी का सिर काटते हैं तो बदले में एक दिन वह भी हमारा सिर काटेगा। इसलिए जिन कर्मों का क़र्ज़ चुकाना बाद में भारी हो, बेहतर है ऐसे कर्म किए ही न जाएँ। ऐसे कठोर परिणाम के बारे में यदि पहले ही सोच-विचार कर लिया जाए तो जीव कभी भी मांसाहार नहीं करेगा:

जो न जिलाया जाय सु जीव न मारिये।
शिर साटे शिर लेय सु क्यों न विचारिये॥[13]

जीव-हिंसा का यह पापकर्म हँसी-हँसी में नहीं टाला जा सकता, अंत में इस पाप का दुख उठाना ही पड़ेगा। रज्जब जी कहते हैं कि मांस खाना तो दूर, मांस अथवा मांस से बनी वस्तुओं का व्यापार भी बिलकुल नहीं करना चाहिए। इससे भी जीव पाप का भागीदार होता है। सबको अपने जैसा ही समझो और अपने हृदय में सभी के प्रति दया की भावना रखो।

ऐसी सोच विचार मांस क्यों खाइये।
हाँसे टले सु नांहिं अंत दुख पाइये॥

रज्जब बणिज विकार न कब हूं कीजिये।
परि हां आपा पर सम देखि दया दिल लीजिये॥[14]

नशे का पूर्ण त्याग

अपनी सांसारिक चिंताओं को भूल जाने के लिए हम कई बार किसी नशे का सहारा लेते हैं और कई बार तो भ्रम के कारण नशे को ध्यान एकाग्र करने का साधन भी मानने लगते हैं। नशे का प्रभाव हमारे मन, बुद्धि और शरीर पर पड़ता है; इतना ही नहीं, इन सब से बँधी जीवात्मा भी इसके बुरे प्रभाव से अछूती नहीं रह पाती। परमात्मा को पाने के लिए जैसा पवित्र नैतिक जीवन जीना आवश्यक है, उसे हम किसी भी प्रकार के नशे का सेवन करते हुए कैसे जी सकते हैं? इसलिए चाहे बीड़ी-सिगरेट, गुटखा-खैनी जैसा कोई भी सामान्य नशा हो, अफ़ीम, शराब जैसा बेसुध कर देनेवाला कोई नशा हो या फिर हेरोइन जैसी कोई ख़तरनाक आधुनिक नशीली वस्तु हो, ये सभी परमार्थ की राह में भारी रुकावटें हैं। संत-महात्मा कभी भी अपने शिष्यों को नशे का सेवन करने की सलाह नहीं देते।

मद पीवत माया गमै, मतवाले मति खोय।
कालेपाणी घर गया, सकल पुकारै लोय॥[15]

इस बात को सब लोग जानते हैं कि शराब पीने से धन का नाश होता है, नशे के प्रभाव में हमारी मति मारी जाती है और घर बरबाद हो जाते हैं। शराब का सेवन मानो राक्षस का धक्का है: 'दारू धक्का दैत्य का, पी परसे मन नाश।'[16] शराब पीने से जीव का मन पतन की ओर चल पड़ता है।

शराब ही नहीं, कोई भी नशा परमार्थ की राह में बाधक है। जो भाँग और अफ़ीम के नशे का आदी हो जाता है, वह इनके वश में हो जाता है और फिर बाद में यदि इन्हें छोड़ भी दिया जाए, तब तक यह शरीर रोगों का घर बन चुका होता है:

अमल अमल अपणा करे, मनसा महीं मँझार।
रज्जब प्राणी परज परि, पीड़ा दु:ख अपार॥[17]

सच्चाई, ईमानदारी, न्यायप्रियता, दयालुता, नि:स्वार्थ भाव से दूसरों के प्रति सद्भावना रखना, संयम रखना और हर काम सेवा समझकर करना—ये सब निर्मल आचरण के गुण हैं। यह आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की तैयारी है। इसी को रज्जब जी ने साररूप में कहा है कि मुक़ाम पर पहुँचने के लिए चार पड़ाव पार करने पड़ते हैं। पहले शरीअत यानी धार्मिक और सामाजिक क़ायदे-क़ानून तहेदिल से मानना, फिर तरीक़त यानी मुर्शिद की रहनुमाई में ख़ुदा की बंदगी करना और फिर मारफ़त यानी बंदगी के ज़रिये अपनी और ख़ुदा की पहचान करना। आख़िरी हक़ीक़त यानी रूह का रब (हक़) में समा जाना:

शरीअत सेव शरीर की, तरीक़ते दिल राह।
माँहि मारफत कीजिये, हकीक़त मिल जाह॥[18]

11

अंतिम समय

रज्जब जी का देहांत कब, कहाँ और कैसे हुआ, इसके बारे में कोई भी ठोस प्रमाण नहीं है, इस बारे में जो कुछ भी कहा गया है वह सब अनुमान पर आधारित है। इसलिए निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। रज्जब जी अपनी देह का त्याग वहाँ करना चाहते थे, जहाँ यह देह परोपकार के काम आ सके। जैसा कि दादू जी ने कहा है:

हरि भजि साफिल जीवंणा, पर उपगार संमाहि।
दादू मरणा तहाँ भला, जहां पसु पंखी खाइ॥[1]

कहा जाता है कि दादू जी के इसी उपदेश के अनुरूप अपने अंतिम समय का ज्ञान होने पर रज्जब जी विक्रमी संवत् 1746 में अपने एक शिष्य रामदास को साथ लेकर टोंक* की ओर चल पड़े। एक वन में पहुँचकर उन्होंने रामदास को लौटा दिया और वहीं भजन में लीन होकर अपनी नश्वर देह को त्याग दिया। एक सच्चे साधु की मृत्यु के बारे में उन्होंने कहा था:

रज्जब साधू शूर का, मरणा है मैदान।
पशु पक्षी पिंड हिं भखै, नाँहीं गोर समान॥[2]

* राजस्थान का एक नगर

उनके कहे अनुसार उनके मृत शरीर को जंगली जानवरों तथा पक्षियों ने खा लिया: 'रज्जब शोभा सब रही, सर्वस आया काम।'[3] इस प्रकार देह-त्याग के बाद भी उनके शरीर के सभी अंग किसी न किसी जीव के काम आए।

कुलमालिक की सच्ची भक्ति करते हुए रज्जब जी ने निश्छल एवं आडंबरहीन जीवन जीया और अपने जन्म-मरण को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया:

फूल को नाश भयो फल आवत,
रैन को नाश भयो दिन आये।
हो तैसे ही नाश भये जन रज्जब,
जामन मरन जगतपति ध्याये॥[4]

उन्होंने परमात्मा से मिलाप के लिए जीवित सतगुरु की आवश्यकता एवं नाम के अंतर्मुखी अभ्यास पर बल दिया। नाम के इस अभ्यास के द्वारा मन इस संसार के रसों से ऊपर उठकर अपने स्रोत में समा जाता है। तब उस जीव को निर्दयी यम के बाण का वार छू भी नहीं सकता: 'तो रज्जब लागै नहीं, जम जालिम का बान।'[5] इस प्रकार ऐसा जीव जीते-जी मृत्यु का द्वार पार करके राम का रूप हो जाता है और अमर जीवन प्राप्त कर लेता है। एक ऐसा जीवन जो इस संसार के भौतिक जीवन से परे है और जिसे कोई साधु-संत ही समझ सकता है:

जो जीवित-मृतक भये, तिन हिं काल भय नांहिं।
रज्जब रहे सु राम व्है, सदा सजीवन माँहिं॥[6]

संत कभी नहीं मरते, उनका मरना तो केवल कहने मात्र के लिए होता है: '*मरिबा मुंहडे कहण को*'[7] धन्य हैं रज्जब जी, जो अपने सतगुरु से इस नर-नारायणी देह के गूढ़ रहस्य का भेद प्राप्त करके तीन गुणों की रचना से ऊपर उठकर अमर हो गए और काल पर विजय पा ली।

उनका संपूर्ण जीवन इस बात का एक जीता-जागता उदाहरण है: '*सदा सनेह रहै सुमिरन सौं, भाग्य भजन में भीगा भाव।*'[8] यदि प्रेमपूर्वक नाम का सुमिरन करते हुए पूरी लगन से भजन किया जाए तो मनुष्य-देही के इसी अवसर में आवागमन का सिलसिला हमेशा के लिए समाप्त किया जा सकता है:

बहु विधि मारै बहुत गुण, तोड़े तीनों साल।
जन रज्जब सो अमर है, जीत्या अपना काल॥[9]

देह दया का मूल

रज्जब रतनों सौं भरी, मानहुँ मनिखा देह।
रे नर निर्धन हो गया, चौरासी के गेह॥[1]

आदम देह अलभ्य धन, पाई पूरण भाग।
तो रज्जब भगवंत भज, हरि सुमिरण लौ लाग॥[2]

बाहर ढूंढै बावरे, भीतर भेदी प्रान।
रज्जब आतम राम कन, समझो संत सुजान॥[3]

भजने को भगवंत है, तजने को पर ताति*।
करणे को उपकार कछू, इहिं अवसर इहिं गाति†॥[4]

आदम सेती औलिया,‡ नर नारायण होय।
मुक्ति द्वार मिनखा जनम, रज्जब बाद न खोय॥[5]

हरि सुमिरन की ठौर§ यहु, मनिखा देही माँहिं।
सो ठाहर¶ सौंपी तुझे, रज्जब समझे नाँहिं॥[6]

सकल भजन का मूल है, मिनखा देही माँहिं।
रज्जब जीव जाणें नहीं, कहैं दया कुछ नाँहिं॥[7]

---

* पर ताति=दूसरों की निंदा
† शरीर
‡ आदम...औलिया=आदमी से संत हो जाता है।
§ ठिकाना
¶ ठिकाना

मिनखा देह अलभ्य धन, जा में भजन भंडार।
सो सु दृष्टि समझै नहीं, मानुष मुग्ध गंवार॥[8]

मनुष्य देह माया सहित, पाई पूरण भाग।
तो रज्जब गुरु साधु की, सेवा दृढ़ करि लाग॥[9]

यहु तन जल का बुदबुदा, अल्प अधूरी आव*।
रज्जब रती न ठाहरै, तो परि कहा चवाव॥†[10]

रज्जब अज्जब वस्तु ली, साहिब जी का नाम।
मनिष देह का फल मिल्या, इहिं अवसर इहिं ठाम॥[11]

रज्जब छाडहु स्वाद सुख, तनकी यारी त्याग।
मनहु मनोरथ मेटि कर, परम पुरुष सौं लाग॥[12]

रज्जब अज्जब घाट है, मिनषा देही माँहिं।
सुरति निरति मधि ऊतरै, पछितावे सो नाँहिं॥[13]

सप्त द्वीप नौ खंड फिर, हाथ चढे कछु नाँहिं।
रज्जब रजमाँ पाइये, आये उर घर माँहिं॥‡[14]

वित ऊपर बीती पड़ी, नर नारायण देह।§
जन रज्जब जगदीश भज, जन्म सफल कर लेह॥[15]

रे प्राणी पासा पड़या, मिनखा देही माँहिं।
जन रज्जब जगदीश भज, यहु अवसर भी नाँहिं॥[16]

---

* उम्र

† **रज्जब...चवाव**=इतना क्षणभंगुर है कि इसकी क्या चर्चा की जाए।

‡ **रज्जब...माँहिं**=केवल ध्यान एकाग्र करके हृदयरूपी घर में आने पर ही शांति को प्राप्त किया जा सकता है।

§ **वित...देह**=यह नर-नारायणी देह धन की सीमा में ही पड़ी हुई है, उससे ऊपर नहीं उठ सकी।

दया न दीसै दृष्टि में, देह दया का मूल।
रज्जब सुमिरण सारिखा, अज्जब बण्या अस्थूल॥*[17]

देणा था सो सब दिया, जब दी मिनखा देह।
सब सुकृत की सौंज यहु,† हरि सुमिरण कर लेह॥[18]

रज्जब नर हरि मिलण को, मिनखा देही ठौर।
चौरासी तन चाहतों, ऐसी मिले न और॥[19]

मनिखा जन्म राम बिन हारा, मानहुं पारस पीस पहुमि पर डारा‡।
सेवा सोना तिनहुं न होय, या सम हानि नहीं कलि कोय॥§[20]

प्राण पाणि पूंजी सु पिंड, मूल सु मिनखा देह।¶
रज्जब सौदा राम सौं, इहिं अवसर करि लेह॥[21]

हीरा लाल मिनख तन येहा, पिशुन पीस कर डारै खेहा**।
वह माँटी नाहीं वहिं मौला,†† रज्जब चेत‡‡ न देखै भोला॥[22]

पारस पौरस कल्पतर, कामद धेनु कहात।§§
मनुष्य देह माधव मिलत, महिमा कही न जात॥[23]

---

* **रज्जब...अस्थूल**=यह अद्भुत स्थूल शरीर, नाम का सुमिरन करने के लिए बनाया गया है।

† **सब...यहु**=यह देह सब शुभ कर्मों को करने के लिए है।

‡ **मानहुं...डारा**=मानो पारस को पीसकर ज़मीन पर फेंक दिया।

§ **सेवा...कोय**=गुरु सेवा का क़ीमती सोना उनको नहीं मिलता। कलियुग में इसके समान कोई दूसरी हानि नहीं हो सकती।

¶ **प्राण...देह**=हे प्राणी! यह शरीररूपी धन तेरे हाथ लगा है। मनुष्य-देही ही मूलधन है।

** **पिशुन....खेहा**=लेकिन मूर्ख मनुष्य उसे विषय-भोगों के साथ पीसकर मिट्टी में मिला देता है।

†† **वह...मौला**=शरीर के मिट्टी में मिल जाने पर प्रभु से मिलाप नहीं होता।

‡‡ होश कर

§§ **पारस...कहात**=इस देह को पारस, रोज़ सोना देनेवाला पुतला—पौरसा, कल्पवृक्ष और कामधेनु कहा है।

मनुष्य देह माया मई, धर्‌या अधर* बिच धन्न।
इहिं छूट्यों छूटै उभय, समझैं समझे जन्न॥[24]

आतम रथ है राम का, आतम का रथ देह।
ये रथ देखहु सागड़ी, परम सयानप येह॥†[25]

जैसे मन माया मिलै, जीव ब्रह्म यूं मेल।
रज्जब बहुरि न पाइये, यहु अवसर यूं खेल॥[26]

इहिं अवसर अवसाण‡ यहु, सत जत सुमिरण होय।
सो रज्जब युग युग सुखी, ता सम और न कोय॥[27]

अल्प आयु बहु विघ्न बिच, अतिगति अहमक मन्न§।
रज्जब अज्जब समय में, करै न सुकृत धन्न॥[28]

आदम के शिर कर धर्‌या, अविगत करना याद।¶
इस काया यहु काम जी, नहिं तो निष्फल बाद॥[29]

मन वच कर्म त्रिशुद्ध है, माया तज भज राम।
जन रज्जब संसार में, एता ही है काम॥[30]

तन धन गृह गाफिल असत्य, ज्यों सु सलिल के झाग।
दल बादल सब झूठ है, रज्जब परिहर राग॥**[31]

---

* आंतरिक गगन मंडल, अंतर में।
† **ये...येह**=सारथी! समझदारी इसी में है कि इस आत्मारूपी रथ द्वारा परमात्मा से मिलाप कर।
‡ समय
§ **अतिगति...मन्न**=अत्यधिक मूर्ख मन
¶ **आदम...याद**=मनुष्य के सिर पर यह कर लगाया है कि उसे सदा सुमिरन करना है।
** **दल...राग**=ये सभी इसी तरह झूठ हैं जैसे भ्रमवश बादलों की घटा में सेना की छवि दिखाई देती है, इसलिए इनका मोह त्याग दो।

मनुष्य देह दामिनि दमक, वेगावेगि सु जाय*।
रज्जब देखो हरि दरश, ढीला ढील न लाय†॥[32]

हरि भज तौं तज तौं विषय, करतौं साधू सेव।
रज्जब इहिं रह चालतौं, मानुष सौं है देव॥[33]

पंच तत्त्व के पंच रंग, प्राण रूप कछु और।
रज्जब कहसी एक को, जा का पहुच्या त्यौर॥‡[34]

रज्जब आतम राम का, वर्णत बने न रंग।
वे अविनाशी और गति, कहिये सो सब भंग॥§[35]

निर्गुण सगुण होत हैं, पंच तत्त्व अरु प्राण।
जन रज्जब इस पेच को, समझै साधु सुजान॥[36]

मिनखा देही मौज दी, सत जत¶ सुमिरण काज।
रज्जब मारि न मांजरै, सौंज दई सिरताज॥**[37]

सत जत सुमिरण को दई, मिनखा देही जानि।
जन रज्जब जग योनि बहु, इन तिहुं थोकों हानि॥††[38]

---

* **वेगावेगि...जाय**=वह शीघ्रातिशीघ्र चली जाती है।
† **ढीला...लाय**=हे आलसी, ढील मत कर।
‡ **रज्जब...त्यौर**=जिसकी अंतर्दृष्टि खुल जाती है, वही यह बात कह सकता है।
§ **वे...भंग**=वे दोनों तो अविनाशी हैं, जबकि जिनका वर्णन किया जा सकता है, वे सब नष्ट होनेवाले हैं।
¶ इंद्रिय संयम
** **रज्जब...सिरताज**=इस शरीर को केवल हड्डियों का ढाँचा समझकर नष्ट न करो, यह प्रभु के द्वारा दी गई मुक्ति की सर्वश्रेष्ठ सामग्री है।
†† **जन...हानि**=वैसे तो संसार में कई योनियाँ हैं पर ये इन तीन ख़ज़ानों से रहित हैं।

रज्जब अज्जब साज यहु, अज्जब सेती लाय।*
मिनख देह यहु मौज महा निधि, नर देखो निराताय॥†[39]

रज्जब अज्जब यहु मता, सब तज भजिये राम।
मनसा वाचा कर्मना, इहिं काया यहु काम॥[40]

चिति चेतन ह्वै देखि मन,‡ मिनखा जन्म न हार।
जन रज्जब जगदीश भज, उलटा अनल विचार§॥[41]

रज्जब अज्जब काम यहु, हरि सुमरो हित लाय।
उलझ न अलि अल आसिरै, जो दीसै सो जाय॥¶[42]

प्राण पचन** ह्वै पलक में, छिन माँहीं चलि जाय।
रज्जब सू समयूं समझ, बहिला बार न लाय॥†† [43]

पाणी‡‡ पाणि§§ न ठाहरै, प्राण पिंड यूं जाणि।
तो परमारथ पाय जल, बात कही निज छाणि॥¶¶[44]

* **रज्जब**...**लाय**=यह देह अद्‌भुत सामग्री (भाव सिरजना) है जो हमें अद्‌भुत प्रभु से मिला सकती है।
† **मिनख**...**निराताय**=हे मनुष्य! विचार करके देखो, यह परमात्मा से मिलाप के महान आनंद का ख़ज़ाना है।
‡ **चिति**...**मन**=हे मन! अपने चित्त में जाग्रत होकर देख।
§ **उलटा**...**विचार**=जैसे अलल पक्षी ज़मीन के बजाय उलटकर आकाश में ही जाता है।
¶ **उलझ**...**जाय**=हे जीवरूपी भौंरे! इस संसार के व्यर्थ आसरों में मत उलझ। जो आसरे दिखाई देते हैं, वे सब नश्वर हैं।
** समाप्त होना, मरना
†† **रज्जब**.....**लाय**=अभी मनुष्य-जन्म का यह बड़ा सुंदर समय मिला है, यह समझकर हे मूर्ख! प्रभु-भजन में देर मत लगा।
‡‡ जल
§§ हाथ
¶¶ **तो**...**छाणि**=बिना देर किए परमार्थ में लगना चाहिए; यह बात विचार करके कही है।

रज्जब मृग जल माँड सब, मानहु मिथ्या जग्ग।
देखन को दरियाव है, तहां न पाणी नग्ग॥[45]

जैसे अहरणि उष्ण परि,* बूंद विलय ह्वै जाय।
त्यों रज्जब देही दशा, हरि भज बार न लाय॥[46]

रज्जब जीव जंत्री तन जंत्र है, पंच मोरने लाग।†
उलटे सूधे फेरिये, हरि मेलन को राग॥[47]

मिनषा देही खेती क्षिति, माँहीं प्राण किसान।
रज्जब साधू घट घटा, वर्ष्यों नेपै जान‡॥[48]

मनुष्य देह अस्थान जीव कब आय है।
चौरासी के फेर दुलभ पुनि पाइ है॥
तकि अवसर तत्काल राम रस पीजिये।
परि हां रज्जब विसवा बीस विलंब न कीजिये॥[49]

इहै सीख सुन लेय न भूली बावरे।
मनुषा देही मौज न लहिये दाँवरे॥
इहिं अवसर इहिं देह नाम निज लीजिये।
परि हां रज्जब समझ अचेत विलंब न कीजिये॥[50]

रज्जब मन में मौज उठि, मन की काया होय।
यूं शरीर पल पल धरै, बूझै बिरला कोय॥[51]

* **जैसे**...**परि**=जैसे गरम अहरन पर पड़ते ही।
† **रज्जब**...**लाग**=यह शरीर एक वीणा की तरह है, जिसको जीव बजाता रहता है। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ इस वीणा की तारों को लगनेवाली खूँटियाँ हैं।
‡ **वर्ष्यों**...**जान**=वर्षा से खेती होती है।

एक न पावै एक बिन, तू ह्वै रह्या अनेक

सांई सबका एक है, सब समझे ता माँहिं।
जन रज्जब रामहिं भजे, तिनके दूजा नाँहिं॥[1]

एक अलिफ में सब इलम, कुल कतेब कुरान।*
हत्या तज हाफिज† भया, जन रज्जब सब जान॥[2]

नाम अनेकों एक है, तो भज राम रहीम।
ज्यों ज्यों सुमिरै सांइयाँ, जन रज्जब सु फहीम‡॥[3]

रज्जब नाम सु एक के, अनन्तों कहे अनन्त।
कोई सुमिर हु एक फल, वेत्ता वदति महन्त§॥[4]

एक कहै अवतार दश, एक कहै चौबीस।
रज्जब सुमिरे सो धणी, जो सब ही के शीश॥[5]

रज्जब रमता राम तज, जाय कहां किस ठौर।
सकल लोक एक हि धरणि, नहिं साहिब कोउ और॥[6]

---

* **एक**...**कुरान**=उस परमात्मा के नाम में सभी विद्याएँ और सभी धर्म ग्रंथ आ जाते हैं।
† रक्षा करनेवाला
‡ समझदार
§ **वेत्ता**...**महन्त**=ज्ञानीजन उसे महान कहते हैं।

रज्जब राजी एक सौं, दूजा दिल न समाय।
देखो देही एक में, द्वै जीव रहै न आय॥[7]

एक आतमा राम इक, एक हि हित चित होय।
दूजा दोस्त क्यों करै, दिल दीन्हे नहिं दोय॥[8]

एक न पावै एक बिन, तू ह्वै रह्या अनेक।
जग त्यागे जगपति मिलैं, रज्जब समझ विवेक॥[9]

बन्दे एक खुदाय के, आदि अंत मधि अब्ब।*
जन रज्जब मस्तक धरै, मन वच कर्म सौं सब्ब॥[10]

सगुण निर्गुण एक है, तो झगड़ा कछु नांहिं।
पै हथलेवा कर दाहिने, देखो ब्याह सु माँहिं॥†[11]

नाम लाग नर निस्तरहिं,‡ हिन्दू मूसल्मान।
उभय§ ठौर एकहि कही, रज्जब वेद कुरान॥[12]

नीचौ नीचा है धणी, ऊंचौ ऊंचा सोय।¶
जन रज्जब बिच सब धर्‌या, उस बाहर नहिं कोय॥[13]

रज्जब उपजी आप सौं, सब तैं न्यारा होय।
अंतरि परिचय एक सौं, क्या समझावै कोय॥[14]

---

* **बन्दे**...**अब्ब**=इस सृष्टि के आदि, अंत, मध्य और वर्तमान समय में जितने भी संत थे, हैं या होंगे, वे सभी उस ख़ुदा के बंदे हैं यानी एक हैं।
† **पै**...**माँहिं**=परंतु देखो! विवाह में कन्या का हाथ वर दाहिने हाथ से ही ग्रहण करता है।
‡ **नाम**...**निस्तरहिं**=नाम के साथ जुड़ने से मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है।
§ दोनों
¶ **नीचौ**...**सोय**=वह ऊँचे से ऊँचा परमात्मा नीचे से नीचे जीव में भी मौजूद है और ऊँचे से ऊँचे में भी।

घर घर दीपक देखिये, पावक परस्यों एक।*
यूं समझे एकहि हुये, रज्जब संत अनेक॥[15]

मनसा वाचा कर्मना, जे जीव पीव सौं होय।
रज्जब आतम राम गति, दृष्टि न दीसे कोय॥[16]

सब संतन का एक मत, जैसा अग्नि स्वभाय।
जन रज्जब जग एकसा, दह दिशि देखो जाय॥[17]

काष्ठ लोह पाषाण की, अग्नि उजागर एक।†
त्यों रज्जब राम हिं भजे, सो नहिं भिन्न विवेक।[18]

अमिल मिल्या सब ठौर है, अकल सकल सब माँहिं।‡
रज्जब अज्जब अगह गति, काहू न्यारा नाँहिं॥[19]

ररै रीझ्या राम जी, अलिफ अलह अस नाँव§।
रज्जब दोनों एक हैं, मन वच कर्म करि गाव॥[20]

नाम अनेकों एक गुण, ज्यों बहु बूंद हुँ वारि।
जन रज्जब जान रु कही, नर निरखहु सु निहारि॥¶[21]

काया माया मांड सौं, मुक्ता करे विवेक।
ताले तीनों लोक को, रज्जब कूँची एक॥[22]

रज्जब अज्जब काम यहु, जे किसही कन होय।
समता घर बैठे सुरति, कदे न देखे दोय॥[23]

---

* **पावक**...**एक**=परंतु छूने पर पता चलता है कि उनमें एक ही अग्नि है।
† **काष्ठ**...**एक**=आग चाहे लकड़ी, लोहे या पत्थर से पैदा हो उसका एक ही रूप होता है।
‡ **अमिल**...**माँहि**=वह परमात्मा अलिप्त होते हुए भी सब जगह व्याप्त है, निराकार होते हुए भी सभी के अंदर है।
§ **अलिफ**...**नाँव**=ये नाम (शब्द) हैं।
¶ **जन**...**निहारि**=रज्जब ने यह बात विचार करके कही है कि हे साधक इस पर ध्यान दो।

सर्वंगी सब गुण लिये, अन अंग अंग अनेक।*
जन रज्जब जीवहु रच्या, अपने काज न एक॥[24]

दर्पण रूपी राम है, निर्दोषी निरधार।
सकल मांड बिच देखिये, रज्जब रती न भार॥[25]

सब ठाहर समसर प्रभु, ज्यों मिश्री का गात।
ता माँहीं दुविधा कहै, सो सब झूठी बात॥[26]

एक हिं मिले सु एक है, त्यों मिल सात हु सात†।
अजों पंच द्वै छाड दे,‡ ज्यों रस आवै बात॥[27]

हिन्दू गति हिन्दू खुशी, तुरक जु तुरकी माँहिं।
रज्जब आशिक एक के, तिनके दोन्यों नाँहिं॥[28]

जन रज्जब यहु सांख्य मत, जीव सीव न विभाग।§
जैसे माला सूत की, सोइ मणिया सोइ ताग॥[29]

ज्यों मुख एक देखि द्वै दर्पण, भोलों दश कर गाया¶।
जन रज्जब ऐसी विधि जाने, ज्यों था त्यों ठहराया॥**[30]

---

* **सर्वंगी**...**अनेक**=सर्वव्यापक, सर्वगुण संपन्न परमात्मा शरीररहित होते हुए भी अनंत शरीरों में विद्यमान है।
† **त्यों**...**सात**=वैसे ही पाँच इंद्रियों, मन और शरीर, इन सात से मिलकर इन्हीं की हो गई हैं।
‡ **अजों**...**दे**=अब तो पाँच इंद्रियाँ तथा मन और शरीर का मोह छोड़ दे।
§ **जन**...**विभाग**=रज्जब जी के अनुसार सांख्य-दर्शन का भी यही सार सिद्धांत है कि जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।
¶ **भोलों**...**गाया**=अज्ञानियों ने दस (अनेक) रूपों में देखा है।
** **जन**...**ठहराया**=हम ऐसी विधि जानते हैं, जिससे जैसा वह है (अद्वैत रूप), उसी रूप में धारण किया है।

सगुण निर्गुण एक है, नित निगम* बतावे।
यूं आतम उरझी उरै,† सो सुलझ न आवे॥[31]

अवधू अकल अनूप अकेला,
महा पुरुष मांहीं अरु बाहर, माया मध्य न मेला॥टेक॥‡
सब गुण रहित रमे घट भीतर, नाद विन्दु में न्यारा।
परम पवित्र परम गति खेलै, पूरण ब्रह्म पियारा॥1॥
अंजन मांहिं निरंजन निर्मल, गुणातीत गुण मांहीं।
सदा समीप सकल विधि समरथ, मिले सु मिल नहिं जाहीं॥2॥
सर्वंगी समसरि सब ठाहर, काहू लिप्त न होई।
जन रज्जब जगपति की लीला, बूझै विरला कोई॥3॥[32]

काष्ठ रु लोह पाषाण की पावक, एक हि रूप रु एक सी ताती।
वृक्ष अठारह भार§ सु बहु विधि, पान के पान मधुर मधु जाती॥
मच्छ अनेक अनेक हि जाति के, जामत एक जु नीर संघाती¶।
हो रज्जब राम को नाम भजे जु, सो आतम एक जु एक सौं राती॥[33]

एकादशी एक दिशि जानें, एक मेक व्है रस रुचि मानें।**
इक आधार एक को गावै, यूं व्है एक एक को पावै॥[34]

* वेद
† **यूं...उरै**=आत्मा अंतर में उलझी हुई है।
‡ **महा...मेला**=वह महान सर्वव्यापक परमात्मा सबके भीतर और बाहर विराजमान है। वह माया के बीच रहते हुए भी माया में नहीं मिलता।
§ **वृक्ष...भार**=संपूर्ण वनस्पति।
¶ **जामत...संघाती**=वे सभी एक ही जल में जन्म लेती हैं और एक साथ ही रहती हैं।
** **एकादशी...मानें**=उस एक के रहस्य को जानना और उससे एकाकार होकर प्रेमपूर्वक नाम का रस ग्रहण करना ही एकादशी तिथि है।

सद्गुरु बिना जीव होये ना पारा

रज्जब रहिये राम में, गुरु दादू के सु प्रसाद।
नातर जाता देखतों, जन्म अमोलक बाद॥*[1]

दादू दीन दयालु गुरु, सो मेरे शिर मौर।
जन रज्जब उनकी दया, पाई निश्चल ठौर॥[2]

गुरु दादू सौं गम भयी,† समझ्या सिरजन हार।
रज्जब राते राम से, छूटे विषय विकार॥[3]

जन रज्जब युग युग सुखी, गुरु दादू की दाति।
आप समागम कर लीये, भयी निरंजन जाति॥‡[4]

रज्जब को अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।
दुख दरिद्र तब का गया, सुख संपत्ति अपार॥[5]

रज्जब को अज्जब मिल्या, गुरु दादू सु प्रसिद्ध।
व्योरन माया ब्रह्म की, सकल बताई विद्ध॥§[6]

रज्जब रजा खुदाइ की, पाया दादू पीर।
कुल मंजिल महरम किया, दिल नाहीं दिलगीर॥¶[7]

* **नातर...बाद**=नहीं तो देखते-देखते ही जन्म व्यर्थ चला जाता।
† **गुरु...भयी**=गुरु दादू के द्वारा मैंने परमार्थ की राह में प्रवेश किया।
‡ **आप...जाति**=अपने में मिला लिया, अब हम भी परमात्मा का रूप हो गए।
§ **व्योरन...विद्ध**=माया तथा प्रभु के स्वरूप के भेद को समझने की विधि भलीभाँति बता दी।
¶ **कुल...दिलगीर**=मुझे सभी मंज़िलों का भेद बता दिया, जिससे मेरे दिल के सब दुख मिट गए।

गुरु दादू देखत कटे, जीव की कोटि जंजीर।
जन रज्जब मुक्ते किये, पाया पूरा पीर॥[8]

गुरु दादू का हाथ शिर, हृदय त्रिभुवन नाथ।
रज्जब डरिये कौन सौं, मिल्या सहायक साथ॥[9]

सुख दाता दुख भंजता, जन रज्जब गुरु साध।
शब्द माँहि सांई मिलैं, दीरघ दत्त अगाध*॥[10]

जीव रच्या जगदीश ने, बाँध्या काया माँही।
जन रज्जब मुक्ता किया, गुरु सम कोई नांहि॥[11]

सकल कर्म ताला भये, जीव जड़या ता माँहि†।
रज्जब गुरु कूंची बिना, कबहूँ खूटे नाँहि॥[12]

रज्जब बाँध्या ब्रह्म का, गुरुदेव छुड़ावे।
औरों को यहु गम नहीं, कोई बीच न आवे॥[13]

गुरु भृंगी के कृत्य को, कृत्य न पूजै कोय।‡
रज्जब रचना राम की, ये ही पलटे दोय॥[14]

सद्गुरु काढे सकल सौं, तन मन पर ले जाय।
जन रज्जब राखे तहाँ, जहाँ निरंजन राय॥[15]

गुरु दीरघ गोविन्द सौं, सारे शिष्य सुकाज।
ज्यों रज्जब मक्का बडा, परि पहुँचे बैठि जहाज॥§[16]

---

* **दीरघ...अगाध**=यह उनकी सबसे बड़ी और अपार दात है।
† **जीव...माँहि**=जीव उसमें बंद है।
‡ **गुरु...कोय**=किसी का भी कार्य गुरु और भृंगी के कार्य की बराबरी नहीं कर सकता।
§ **ज्यों...जहाज**=जैसे बड़ा तो मक्का है, परंतु वहाँ जहाज़ पर बैठकर ही पहुँचा जा सकता है।

नाम शब्द निज नाव है, समुद्र रूप संसार।
रज्जब गुरु खेवट बिना, चढे न पहुँचे पार॥[17]

रज्जब महिमा साधु की, मोपै कही न जाय।
आदि अंत मधि मांड में, जो निबहै इक भाय॥[18]

भव-सागर संसार यह, साधू शुद्ध जहाज।
रज्जब परसे पार है, कठिन सरे यहु काज॥[19]

नाम नाव साधू कनें, बूडत* लेहि चढाय।
महिमा उस उपकार की, रज्जब कही न जाय॥[20]

साधू जन संसार में, आभे† का अवतार।
सींच समावे शून्य में, आवें पर उपकार॥‡[21]

साँई सौंपी साधु को, औषधि अमर अराध।
जीया चाहै आइ ल्यो, सन्त सजीवनि लाध॥§[22]

देखो पारस परस तों, लोहे लाभ सु लीन्ह।
रज्जब गुरु दादू मिलत, सो गति हमसों कीन्ह॥[23]

गुरु दादू का ज्ञान सुन, छूटें सकल विकार।
जन रज्जब दुस्तर तिरहिं¶, देखैं हरि दीदार॥[24]

---

* डूबते हुओं को
† बादल
‡ **सींच...उपकार**=जैसे बादल धरती को जल से सींचकर फिर आकाश में समा जाते हैं, उसी प्रकार संत भी नामरूपी वर्षा करके परमात्मा में समा जाते हैं। वे परोपकार के लिए ही आते हैं।
§ **जीया...लाध**=यदि अविनाशी जीवन चाहते हो तो संतों की शरण में जाकर उनसे यह नामरूपी संजीवनी बूटी प्राप्त कर लेनी चाहिए।
¶ कठिन भवसागर तैर जाते हैं।

गुरु बिन गम नहिं पाइये, पिंड प्राण पर वेश।
रज्जब गुरु गोविन्द बिन, कौन दिखावे देश॥[25]

गुरु बिन गम नहिं पाइये, समझ न उपजे आय।
रज्जब पंथी पंथ बिन, कौन दिसावर जाय॥[26]

सद्गुरु साधु जहाज तज, विरचे मूरख दास।
जन रज्जब हैरान है, कहां करेगा बास॥[27]

गुरु गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
दर्शन परसन होत ही, भाजन भल भरिया*॥[28]

रज्जब पारस परसतें, लोहा पलट्या गोत†।
त्यों निर्धन धनवंत मिल, अ वित स विता होत‡॥[29]

वसुधा माँहीं बीज हैं, त्यों आतम अंकूर।
पै गगन गुरु वर्षा बिना, प्रकट न ह्वै मा सूर॥[30]

प्राण कीट गुरु भृंग बिन, ब्रह्म कमल क्यों जाय।§
जन रज्जब या युक्ति बिन, विष्टा रहे समाय॥[31]

देह हिं दीक्षा देत हैं, दिल दीक्षा कोइ नाँहि।
रज्जब सद्गुरु सो सही, जो दीक्षा दे दिल माँहि॥[32]

तन मन शिष रोगी भये, वैद्य मिले गुरु आय।
जन रज्जब सु हकीम हद¶, जासौं व्यथा विलाय॥[33]

---

* **भाजन...भरिया**=हृदयरूपी बरतन भलीभाँति भर गया।
† गोत्र, वंश भाव लोहे की जिस परंपरा में वह पैदा हुआ था वह बदल गई।
‡ **अ...होत**=निर्धन धनवान हो जाता है।
§ **प्राण...जाय**=प्राणीरूपी कीड़ा गुरुरूपी भृंग के बिना परमात्मारूपी कमल तक कैसे पहुँच सकता है?
¶ कामिल

जड़ मूरति उर नाम बिन, तापर मंगलाचार।*
तो रज्जब कर आरती, गुरु पर बारंबार।[34]

शिला सँवारी राज नें,† ताहि नवैं सब कोय।
रज्जब शिष सद्गुरु गड़े, सो पूजा किन होय॥[35]

अति उछाह आनन्द अति, मन मंगल सु कल्यान।
रज्जब मिलतों संतजन, सुख सागर दर्शान॥[36]

पारस चुंबक लोह मिल, पुनि चन्दन बन राय।
जड़ पलटे मृतक चलहिं, त्यों सत्संगति आय॥[37]

वृक्ष बीज मिश्रित सदा, सेवक स्वामी तेम।‡
पाला पानी होत है, पुनि पानी तैं हेम॥[38]

साधू दिल सांई रहै, हरि हिरदै में साध।
रज्जब महिमा क्या कहै, ठाहर उभय अगाध§॥[39]

रज्जब भक्त भण्डार में, राख्या नाँणा¶ नाम।
तो देखो भगवन्त घर, साधु शिरोमणि ठाम॥**[40]

जो दत जीव हिं जीव दे, तिहिँ पसाव प्रभु दूर।††
रज्जब साधू नाम देहिं, सु नरहरि करे हजूर॥[41]

---

* **जड़...मंगलाचार**=जड़ मूर्ति अंतर में नाम से रहित है, उसका गुणगान करते हैं।
† **शिला...नें**=राजमिस्त्री ने पत्थर से मूर्ति बनाई है।
‡ **वृक्ष...तेम**=जैसे वृक्ष में बीज तथा बीज में अंकुर के रूप में वृक्ष सदा मौजूद रहता है, उसी प्रकार संतरूपी सेवक और परमात्मारूपी स्वामी हमेशा एक दूसरे में समाए रहते हैं।
§ **ठाहर...अगाध**=दोनों अपार हैं।
¶ धन
** **तो...ठाम**=देखो, तभी तो परमात्मा ने अपने घर में संत को शिरोमणि स्थान दिया है।
†† **जो....दूर**=जीवों के द्वारा एक दूसरे को दिए गए सांसारिक उपहार उन्हें प्रभु से दूर कर देते हैं, क्योंकि इनसे लेन-देन का सिलसिला जारी रहता है।

जन रज्जब गुरु की दया, सु दृष्टि प्राप्त सु होय।
प्रकट रु गुप्त पिछानिये, जिस हि न देखे कोय॥[42]

सद्गुरु पारस पौरसा, अक्षय अभय भण्डार।
रज्जब बचन विवेक धन, लहिये बारम्बार॥[43]

माता पिता सुत नारि सौं, विष फल आवे हाथ।
जन रज्जब गुरु की दया, सदा सु सांई साथ॥[44]

षड् दर्शन के गुरुहुँ का, आदि गुरु गोविन्द।*
सो रज्जब समझे नहीं, तो सभी जीव मति मंद॥[45]

रज्जब दीपक लाख पर, कोटि ध्वजा आनन्द।
तो गुरु की कर आरती, जामें है गोविन्द॥[46]

जन रज्जब विछुड़त मरहिं, जिनके अमल अराध†।
मनसा वाचा कर्मना, साखी सद्गुरु साध॥[47]

साहिब सौं साधू बड़े, साधू बड़ा न कोय।
रज्जब देख्या गुरु दृष्टि, सब नीके कर जोय‡॥[48]

साधु सुधा के कुंड हैं, अवलोकहु दिल माँहिं।
तिहिं अमृत आतम अमर, सो पीवहु क्यों नाँहिं॥[49]

सद्गुरु के सु प्रसाद में, रज्जब दोष न कोय।
यथा कामिनी बाँझ के, बालक कदे न होय॥[50]

रज्जब दोस्त जीव के, सांई सद्गुरु साध।
यहु शिक्षा सुन सेय सो, जे है बुद्धि अगाध॥[51]

---

* **षड्...गोविन्द**=छः दर्शन में गुरुओं का आदि गुरु परमात्मा है।
† **जिनके...अराध**=जिन्होंने निर्मल परमात्मा की भक्ति की।
‡ **सब...जोय**=इस बात पर दृढ़ निश्चय कर ले।

श्रवण कथा साँची सुनी, संगति सद्गुरु की।
दूजा दिल आवै नहीं, जब धारी धुर की॥[52]

सद्गुरु के सदके किया, जिन जीव जिलाया*।
सहज सजीवन कर लिया, सांचे संग लाया॥[53]

शब्द सुरति गुरु शिष्य है, मिलें श्रवण सु स्थान।
भाव भेंट परि दया दत,† रज्जब दे ले जान॥[54]

गुरु चंदन चन्दन किये, वृक्ष अठारह भार।
डाल पान फल फूल का, रज्जब नहीं विचार॥[55]

गुरु पारस पल में परसि, शिष कंचन कर लीन।
सो रज्जब महँगे सदा, कुल कालिमा सु छीन॥‡[56]

दीपक रूपी धरणि है, सूरज मय आकाश।§
जन रज्जब गुरु ज्ञान बिन, हिरदै नहीं उजास॥[57]

घट भण्डार भगवंत का, आतम वित तिहिं थान¶।
भण्डारी भण्डार में, जन रज्जब गुरु ज्ञान॥[58]

चाबुक अंकुश शब्द सत, हय गय मन पर धार।
रज्जब गुरु असवार बिन, को काढै पशु मार॥**[59]

---

* ज़िंदा किया
† **भाव...दत**=भक्तिभाव भेंट करने पर गुरु ने दया का दान दिया।
‡ **सो...छीन**=रज्जब आंतरिक इशारा करते हुए कहते हैं कि आत्मा पर लगी कर्मों की कालिख शब्द-धुन का स्पर्श पाकर दूर हो जाती है। आत्मा मूल्यवान हो जाती है भाव इसे निजरूप की पहचान हो जाती है।
§ **दीपक...आकाश**=भले ही सारी धरती दीपक का रूप हो जाए और आकाश सूर्य बन जाए।
¶ **आतम...थान**=आत्मा ही उसमें धन है।
** **चाबुक...मार**=जैसे घोड़े को चाबुक द्वारा और हाथी को अंकुश द्वारा उन पर सवार व्यक्ति ही गंतव्य स्थान पर पहुँचा सकता है, इसी तरह गुरु द्वारा मन पर शब्द की चोट ही उसे मंज़िल पर पहुँचाती है।

रज्जब शब्द समुद्र मधि, मत मुक्ता निज ठौर।
सो गुरु मर जीवे* बिना, आनि न सकई और॥[60]

सद्गुरु को पूजै नहीं, यद्यपि स्याणे दास।
रज्जब आभे बहु चढैं, तो भी तल आकाश†॥[61]

रज्जब अग्नि अनन्त हैं, एक आतमा माँहि।
सद्गुरु शीतल सर्व विधि, बहु वह्नि‡ बुझ जाँहि॥[62]

जेते जीव सुकृत करैं, इहि सारे संसार।
तेते रज्जब ज्ञान सुन, साधुन के उपकार॥§[63]

गुरु तरुवर अँग डाल बहु, पत्र बैन फल राम।¶
रज्जब छाया में सुखी, चाख्यूं सरे सु काम॥[64]

जे सद्गुरु की दृष्टि में, तो गंदा क्यों होय।
जन रज्जब दृष्टांत को, कछुवी अंडहिं जोय॥[65]

जे सद्गुरु की दृष्टि में, दूर निकट ले पाल।
जन रज्जब दृष्टांत को, कूंज अंड ले न्हाल॥[66]

---

* ग़ोताख़ोर
† **तो...आकाश**=फिर भी बादल आकाश के नीचे ही रहते हैं।
‡ आग
§ **तेते...उपकार**=संतों का उपदेश सुनकर जीव शुभ कर्म करते हैं, यह संतों का ही उपकार है।
¶ **गुरु...राम**=गुरुरूपी वृक्ष की टहनियाँ उनका शरीर है और पत्ते उनके वचन हैं। प्रभु का नाम इस वृक्ष का फल है।

सद्गुरु मृतक जहाज गति, शिष सब जीवित माँहि।*
जन रज्जब जोख्यूं गई, भव जल बूडैं नाँहिं॥[67]

रज्जब काचा सूत शिष, लिपट्या सद्गुरु हाथ।
काल कसौटी देय दिव्य, जले न साँचे साथ॥†[68]

गुरु संतोषी चन्द्र मय, शिष नक्षत्र निरीहाय।
जन रज्जब तिहिं सभा को, देख दृष्टि बलि जाय॥[69]

चंद उदय ज्यों चाह बिन, कमल खिले अपभाय‡।
त्यों रज्जब गुरु शिष्य ह्वै, तो दोष न दीया जाय॥[70]

शिष्य गुडी सुरति डोरी में, गुरु खिलार हित हाथ।§
तंतू टूटे तैं गई, साबित सांई साथ॥[71]

लोह शिष्य पारस गुरु, मेले मेलनहार।
सौंघे सौं¶ मँहगे भये, अनवांछित व्यवहार॥[72]

रज्जब राम न रहम कर, अक्षर लिखे न भाल**।
ताथें सद्गुरु ना मिल्या, शिष रहे कंगाल।[73]

---

* **सद्गुरु...माँहि**=सतगुरु सूखी लकड़ी से बने जहाज़ के समान हैं और शिष्य उसमें बैठे जीवित प्राणियों की तरह।
† **रज्जब...साथ**=सतगुरु के संग रहने से काल की परीक्षा में शिष्य का हाथ नहीं जलता। (पूर्वकाल में कच्चा सूत हथेली पर लपेटकर उस पर लोहे का जलता गोला रख देते थे। तब सच्चे का हाथ नहीं जलता था, झूठे का जल जाता था)
‡ अपने भाव से
§ **शिष्य...हाथ**=जब तक शिष्यरूपी पतंग की सुरतरूपी डोरी गुरुरूपी पतंगबाज़ के हाथ में है, तो वह प्रभु के साथ है।
¶ सस्ते से
** **रज्जब...भाल**=जब तक परमात्मा दया नहीं करता तब तक जीव के मस्तक में मुक्ति के लेख नहीं लिखे जाते।

सच्चा गुरु

सद्गुरु सोध रु* कीजिए, साहिब सौं साचा।
रज्जब परसे पार ह्वै,† सुन मनसा वाचा॥[74]

सत जत सुमिरण हिरदै साँच, सो सद्गुरु शिष ह्वै मन राच।
रज्जब कहै परख गुरुदेव, सेवक हो कीजे ता सेव॥[75]

साँचा साहिब मरे न जामै, झूठा आवै जाय।
रज्जब सद्गुरु सत्य सु लागै, साधू सु ले निरताय‡॥[76]

साँचा गुरु दृढावे राम, निर्लोभी खरतर§ निष्काम॥
परमारथी प्रमौधै प्राण¶, विषयों मांहिं न देवै जाण।
काम प्रसिद्ध करे मन लाय, स्वारथ संग सरक नहिं जाय॥
दीरघ दशा देय दिल आण, त्रिगुण रहित निर्गुण निज छाण।
जा मत में सीझै सब और, सो ले देय नाम निज ठौर॥
नख शिख फेरि करै निज रूप, विषय विकार काढ़ गृह कूप।
जीव मांहिं जीवनि ले देय, यूं रज्जब सद्गुरु करि लेय॥[77]

---

* परख करके
† **रज्जब...ह्वै**=उपदेश पर अमल करता है, वह पार हो जाता है।
‡ विचार करके
§ माहिर, पूर्ण ज्ञानी
¶ **परमारथी...प्राण**=प्राणी को परमार्थ समझाए।

पाखंडी गुरु

पर कारज किरपण करै*, अपने काम उदार।
जन रज्जब गुरु स्वारथी, शिष सब किये ख्वार॥[78]

रज्जब चेला चक्षु बिन, गुरु मिल्या जाचंध।†
कूप मयी यहु कुंभिनी, क्यों पावें प्रभु पंध॥‡[79]

गुरु के अंग हुं गुरु नहीं§, शिष्य न ले ही सीख।
रज्जब सौदा ना बण्याँ, पेट भरहु कर भीख॥[80]

लोभी गुरु कहै मुख राम, मन मांहीं सूधा सहकाम॥
मूठी तल आवे जो प्राण, सो जिव लहै न बाहर जाण॥¶[81]

भूखे गुरु शिष यूं मिलैं, ज्यों वैशाखे बँस डार**।
जन रज्जब बोलत घसत, दोऊ जर बर छार॥††[82]

घर घर दीक्षा देहिं गुरु, शिष्य न सुलझे कोय।
जन रज्जब सब लालची, ताथैं भला न होय॥[83]

शिष सारे गुरु को गिलैं, गुरु सेवक सब खाय।
रज्जब दोनों यूं मिले, हरि में कौन समाय॥[84]

---

* **पर...करै**=दूसरों के काम करने में जो कंजूसी करे।
† **रज्जब...जाचंध**=शिष्य अंधा है और उसे जन्म से अंधा गुरु मिला।
‡ **कूप...पंध**=उनके लिए यह सारी पृथ्वी ही कुएँ की तरह है, वे इसी में पड़े रहते हैं, उन्हें प्रभुप्राप्ति का मार्ग नहीं मिलता।
§ **गुरु...नहीं**=जिस गुरु में गुरु के लक्षण नहीं।
¶ **मूठी...जाण**=जो प्राणी उसके कब्ज़े में आ जाता है, उसे बाहर नहीं जाने देता।
** **ज्यों...डार**=जैसे वैशाख महीने में बाँसों की टहनियाँ।
†† **जन...छार**=दोनों इसी तरह लड़-झगड़कर जलकर भस्म हो जाते हैं, जैसे बाँसों की टहनियाँ आपस में घिसकर जलकर नष्ट हो जाती हैं।

रोगी को भासे उभय, वैद्यहिं दीसे तीन।*
रज्जब ऐसे गुरु शिषहु, कहु सु क्या मिल कीन॥[85]

गुरु आज्ञा

गुरु की आज्ञा में रहै, सो शिष कोई एक।
रज्जब रहे वन रोझ मन,† आज्ञा भंग अनेक॥[86]

रज्जब रहिये रजा में, गुरु गोविन्द हजूर।
इनकी आज्ञा मेट तैं, देखत पड़िये दूर॥[87]

सद्गुरु सूरज शिष सलिल, आज्ञा आवे जाँहि।
रज्जब रहतौं इहिं जुगति, सेवक स्वामी माँहि॥[88]

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकाश।
ये सांई के कहे में, त्यों रज्जब गुरु दास॥[89]

रज्जब आज्ञा में ऊभा‡ रहै, आज्ञा बैठे आय।
आज्ञा में आडा हुआ, आज्ञा ऊठे जाय॥[90]

आज्ञा में पति व्रत रहै, आज्ञा में धर्म नेम।
रज्जब आज्ञा उर चढे, आज्ञा कुशल रु क्षेम॥§[91]

आज्ञा में आतम अरथ, आज्ञा ऊरण¶ होय।
आज्ञा चले सु उद्धरे, साध कहैं सब कोय॥[92]

---

* **रोगी...तीन**=रोगी को एक के दो दिखाई देते हैं, वैद्य को दो के तीन।
† **रज्जब...मन**=जिसका मन वन में घूम रही नील गाय के समान है।
‡ खड़ा
§ **रज्जब...क्षेम**=जब गुरु की आज्ञा हृदय में बस जाती है तो उस आज्ञा से सदा आनंद मंगल रहता है।
¶ क़र्ज़ से मुक्ति

आज्ञा में ऊभा रहै, एक मना इकतार।
रज्जब उज्वल अनन्य है, वह उतरेगा पार॥[93]

आज्ञा में अघ ऊतरैं, आज्ञा पावन प्राण॥*
सो आज्ञा आठों पहर, जन रज्जब उर आन॥[94]

आज्ञा में ऊंची दशा, आज्ञा उत्तम ठौर।
उभय† एक आज्ञा चल्यों, सो आज्ञा शिर मौर॥[95]

चेला चेतन चाहिये, ज्यों अक्षर शब्द हि लेय।
रज्जब शिष श्रद्धा यही, गुरु मत जान न देय॥[96]

बावन अक्षर सेवका, सद्गुरु शब्द समान।‡
रज्जब दुहुँ सों एक व्है, सो गुरु शिष्य प्रमान॥[97]

गुरु आज्ञा इन्द्रिय दमन, आज्ञा परिहर काम§।
रज्जब आज्ञा आप हत, आज्ञा भजिये राम॥[98]

गुरु आज्ञा दुनिया तजहु, आज्ञा दर्शन त्याग।
रज्जब आज्ञा ऐन यहु, पाखंड प्रपंच से भाग॥[99]

आज्ञा गुरु गोविन्द की, चलै सु चेला चार¶।
रज्जब रम तों मन मुखी, पग पग पूरी मार॥[100]

---

* **आज्ञा...प्राण**=हुक्म में रहने से पाप नष्ट हो जाते हैं और जीव पवित्र हो जाता है।
† ऊँची अवस्था और निज-घररूपी उत्तम ठौर-ये दोनों।
‡ **बावन...समान**=जैसे बावन अक्षर मिलकर शब्द में एक हो जाते हैं, उसी तरह सेवक सतगुरु में समाकर एक हो जाता है।
§ **आज्ञा...काम**=आज्ञा में रहते हुए काम को त्याग दो।
¶ दास

आज्ञा में आतम रहै, आज्ञा भाने भंग।*
रज्जब सगुरा सीख में, निगुरा अपने रंग॥[101]

आज्ञा में आगे रहैं, गुरु गोविन्द हजूर।
जन रज्जब दिल दूसरे, द्वै ठाहर तैं दूर॥†[102]

आज्ञा में अनमोल है, अन आज्ञा अढ आघ।‡
रज्जब रंग सु रजा में, विरच्यों बाल्हे बाघ॥§[103]

धोम वास बल वायु के, संग समीर सु जाँहि।¶
तैसे रज्जब गुरु शिषों, सदा सु आज्ञा माँहि॥[104]

---

* **आज्ञा...भंग**=आज्ञा मानने से ही जीव की रक्षा होती है, आज्ञा न मानने से वह नष्ट हो जाता है।

† **जन...दूर**=जो आज्ञा से विमुख रहते हैं, वे गुरु और परमात्मा दोनों से दूर रहते हैं।

‡ **आज्ञा...आघ**=हुक्म में रहने को अति उत्तम माना जाता है, जबकि हुक्म में न रहने से उसकी श्रेष्ठता में कमी आ जाती है।

§ **रज्जब...बाघ**=रज़ा में रहने से उसकी काया-पलट हो जाती है और वह प्रियतम का ही रूप हो जाता है।

¶ **धोम...जाँहि**=धुएँ और सुगंध की ताक़त वायु होती है, वे हवा के साथ ही एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं।

साधु समागम घड़ी

रज्जब साधू दरसतैं, साहिब आवे याद।
आयु न पूजे उस पल हिं, देखर दीज्यो दाद॥[1]

इक औषधि मय आतमा, इक पीड़ा मय प्राण।
रज्जब संगति कीजिये, सुख दुख शौधि सुजाण॥[2]

ज्यों शिल सूखी नदी में, जड़ी तुम्बिका बेल।*
सो रज्जब सहजैं तिरे, त्यों सत्संगति मेल॥[3]

सदा अभूली भूलिये, भूल्या आवे याद।†
यहु रज्जब सत्संग फल, देखर दीज्यो दाद॥[4]

चिदानन्द का चिन्तवन,‡ चौरासी में नाँहि।
जन रज्जब सो पाइये, साधू संगति माँहि।[5]

परम पुरुष पारस परसि, साधू सोना होय।
तो रज्जब सत्संग सौं, मिलत न वरजो§ कोय॥[6]

महर मौज देना दिया, जब हि मिलाये साध।
रज्जब संगति तिनहुं की, जीव जन्म फल लाध॥[7]

---

* **ज्यों...बेल**=जैसे पत्थर सूखे कद्दू के खोल के सहारे नदी में तर जाता है।

† **सदा...याद**=कभी न भूलनेवाली माया भूल जाती है और जिस प्रभु को हम भूले बैठे थे, उसकी याद आ जाती है।

‡ **चिदानन्द...चिन्तवन**=चेतन और आनंदस्वरूप परमात्मा का सुमिरन।

§ रोको

साधु संगति सुमिरन सुकृत, महर मुहूरत होय।
रज्जब अज्जब मुक्ति फल, पावे विरला कोय॥[8]

सद्गुरु के शब्दों सुन्यो, बहुत होय उपकार।
जन रज्जब जगपति मिले, छूटे सकल विकार॥[9]

उत्तम आदम देह है, उत्तम संगति साध।
उत्तम संगति कीजिये, उत्तम हरि आराध॥[10]

पारस चुंबक लोह मिल, पुनि चन्दन वन राय।
जड़ पलटे मृतक चलहिं, त्यों सत्संगति आय॥*[11]

रज्जब पलटे जीव सुध, साधू संगति आय।
पारस लोहा पहुप तिल, स्रक चन्दन वन राय॥†[12]

सत्य तीर्थ सत्संग है, वारि विमल बिच बोध‡।
रज्जब रज मल ऊतरे, वेत्ता वदन सु शोध§॥[13]

तन मन सिमटे सहज ही, जो सत्संगति होय।
जन रज्जब दृष्टांत को, बेलि लजालू जोय¶॥[14]

साधू संदल पारस पारा, भृंगी छाँह हमाय।**
रज्जब मन तन पलटणों, भागहुं मिलहिं सु आय॥[15]

* **जड़...आय**=जैसे जड़ (स्थिर) लोहा चुंबक के प्रभाव में आकर चलने लगता है, वैसे ही मृतक के समान (अज्ञानी) जीव सत्संगति के प्रभाव से परमार्थ की ओर चलने लगता है।
† **पारस...राय**=जैसे पारस को छूते ही लोहा सोना बन जाता है, सुगंधित फूलों के साथ मिलकर तिल का तेल इत्र बन जाता है और चंदन के वन में उगनेवाले वृक्ष चंदन की तरह सुगंध देते हैं।
‡ **वारि...बोध**=जिसका ज्ञानरूपी निर्मल जल है।
§ **वेत्ता...शोध**=ज्ञानीजनों के उपदेश के अनुसार इसकी खोज करनी चाहिए।
¶ **बेलि...जोय**=जैसे लाजवंती (छुईमुई) की बेल सिमट जाती है।
** **साधू...हमाय**=संतजन चंदन, पारस, पारे, भृंगी और हुमा पक्षी की छाया के समान होते हैं।

सु साधु संग जहाज जग, यथा स्वाति सीप हिं पड़ी।*
'रज्जब' छाह हमाय शिर,† त्यों सत-संगति की घड़ी॥[16]

साधु दर्श नैना ठरै, शब्द परस सुन कान।
रज्जब मेला मन मिल्यूं, सब ठाहर सुख सान॥‡[17]

* **सु...पड़ी**=साधु-संगति संसार सागर को पार करने का उत्तम साधन है, जैसे मोती बनने में सीप स्वाति बूँद के लिए साधन है।
† **'रज्जब'...शिर**=जैसे प्राणी के सिर पर हुमा पक्षी की छाया पड़ने से लाभ होता है।
‡ **रज्जब...सान**=इस मिलाप से जब मन भी शब्द में लीन हो जाता है तो दुनिया में हर कहीं सुख मिलता है।

तन मन में मारग मिल्या

रज्जब अज्जब देखिये, जप जगदीश जहाज।
प्राणी पहुँचे पार चढ, सरे सु आतम काज॥[1]

रज्जब रीता राम बिन, भर्‌या भजे भगवान।
मनसा वाचा कर्मना, नीके किया निदान॥*[2]

सब करणी साधन किये, त्यागी शूर सुजान।
जो रज्जब राम हिं भजे, मन मनसा घर आन॥[3]

मन तुरंग चेतन चढै, पवन पंथ सो जाय।
रज्जब बैठे शून्य में, माँहीं मिले खुदाय॥[4]

सुमिरन

आदम की ओलाद को, बड़े चार ये काम।
साच सहित सत जत लिये, रज्जब सुमिरे राम॥[5]

रज्जब सुमिरन की सिफत, मो पै कही न जाय।
जा के वश दोनों भये, कुदरत सहित खुदाय॥[6]

बंदे को यहु बन्दगी, साहिब करना याद।
यह सेवा सुमिरन यही, यही जिकर फरियाद॥[7]

---

* **रज्जब**...**निदान**=जो मन, वचन और कर्म से प्रभु में लीन रहता है, वह भरा हुआ है, अन्यथा ख़ाली है। यही जीव की मूल पहचान है।

रज्जब अज्जब यह मता, निशि दिन नाम न भूल।
मनसा वाचा कर्मना, सुमिरन सब सुख मूल॥[8]

तन मन ले सुमिरण करे, रोम रोम रट राम।
यूं रज्जब जगदीश भज, सरे सु आतम काम॥[9]

मुख रसना प्रभुजी दिये, अपने सुमिरण काज।
सुर नर निन्दा में खरच, रज्जब खोई लाज॥[10]

सुमिरण शहद सु पीजिये, प्राण पिंड द्वै पोष*।
रज्जब रोग कहां रहे, भागे अंतर दोष॥[11]

रज्जब अज्जब काम है, राम नाम रुचि सेव।
आठौं पहर अखंड रट, मानुष से व्है देव॥[12]

कौडी कौटि न चाहिये, कहतों केवल राम।
रज्जब दम दम सुमिरिये, नहिं दामों से काम॥[13]

रज्जब रटिये रैन दिन, राम नाम इकतार।
फिर पीछे पछिताहुगे, यहु अवसर यहु बार॥[14]

रज्जब हिन्दू तुरक तज, सुमिरहु सिरजन हार।
पखा पखी सौं प्रीति कर,† कौन पहुंचा पार॥[15]

रज्जब सुमिरे राम को, रोक दशों दिशि द्वार‡।
नख शिख राखे नाम में, यों ही पैला पार॥§[16]

---

* **प्राण**...**पोष**=शरीर और आत्मा दोनों का पोषण होता है।
† **पखा**..**कर**=किसी एक पक्ष का समर्थन और दूसरे का विरोध करनेवाला।
‡ **रोक**...**द्वार**=दसों दिशाओं अर्थात् सब तरफ़ से।
§ **नख**...**पार**=जब रोम-रोम नाम-सुमिरन में लीन हो जाता है, तब भवसागर पार कर सकता है।

पाले के पर्वत गलहिं, देख सूर की ताप।
ऐसी विधि अघ* ऊतरहिं, जन रज्जब हरि जाप॥[17]

साबुन सुमिरण जल सत संग, शुक्ल कृत्य† कर निर्मल अंग।
रज्जब रज उतरै इहिं रूप, आतम अम्बर होय अनूप॥[18]

रज्जब पैठे राम में, सो रट द्वारे होय।
मिलबे को मारग यही, और न दूजा कोय॥[19]

साहिब के घर सौंज बहु,‡ सुमिरन सम कोइ नाँहि।
रज्जब भज भगवंत ह्वै, सकल बोल ता माँहि॥[20]

सुमिरन सम संपद् नहीं, धन नहिं ध्यान समान।
वित यह बारंबार ले, रज्जब रिधि रट जान॥[21]

कठिन काम भजन राम, करिबे को कोई।
एक आध सुमिर साध, आपै गत होई॥[22]

मनसा मैली पाप करि, पुण्य पाणी करि धोय।
सुमिरण साबुन लावतां, रज्जब ऊजल होय॥[23]

रज्जब मुख अक्षर मुख सप्त स्वर, मुख भाषा छत्तीस।§
एतौं ऊपर उर भजन, अन अक्षर जगदीश॥[24]

बहु विद्या हूनर बहुत, सुमिरण सम नहिं कोय।
रज्जब गुण गुण सौं मिले, नाम सु नरहरि होय॥[25]

---

* पाप
† पवित्र कर्म
‡ **सौंज बहु**=सामग्री भाव बहुत-से साधन
§ **रज्जब...छत्तीस**=रज्जब कहते हैं, बावन अक्षर, सात स्वर और छत्तीस भाषाओं को मुख से बोला जाता है।

रज्जब सुमिरन सदन मध्य, धरे अधर के सु:ख।*
जे कोइ पैठै प्राणियाँ, कदे न पावे दु:ख॥[26]

हरि सुमिरन संशय हरे, पाप जाप सौं जांहिं।
जन रज्जब जगदीश भज, नौ निधि है जा माँहिं॥[27]

तन मन आतम लोह को, मिल्या सु पारस नांउ।
तिन तीन्यों कंचन किये, सत सुमिरन बलि जांउ॥[28]

जप जहाज जलनिधि जगत, जीव चढो कोइ आय।
रज्जब पारस परम गुरु, सो पद परसे जाय॥[29]

प्रभु परिपूरण मौजतैं,† सत जत सुमिरन होय।
रज्जब पावे रहम सौं, और न दाता कोय॥[30]

निशि दिन सुमिरण कीजिये, तन मन प्राण समोय।
जन्म सफल सांई मिलै, जिव जपि साध हु दोय॥[31]

सहज सबूरी साच लै,‡ सुमिरै निर्मल अंग।
सो रज्जब रामहिं मिले, सब संपति तिहिं संग॥[32]

सुमिरण सुकृत सौं भला, सब काहू का होय।
रज्जब अज्जब उभय गुण, करत न शंकहु कोय॥§[33]

तू हीं तू हीं तन में करे, इक तत तृष तिहुँ काल¶।
जन रज्जब रुचि सौं रटै, भाग भले तिहिं भाल॥[34]

---

* **रज्जब...सु:ख**=सब आंतरिक सुख सुमिरन के अंदर हैं।
† **प्रभु...मौजतैं**=प्रभु की पूरी कृपा से ही
‡ **सहज...लै**=जो सहज संतोष और सत्य का सहारा लेता है।
§ **रज्जब...कोय**=सुमिरन और शुभ कर्म—ये दोनों ऐसे गुण हैं जिन्हें करने में संकोच नहीं करना चाहिए।
¶ **इक...काल**=तीनों कालों में एकरस मिलन की प्यास हो।

सत जत सुमिरण सारिखा, जीव के सगा न और।
वह सुख दायी प्रवृत्ति है, वह पहुंचावे ठौर॥[35]

रहति सहित सुमिरण करै, सतवादी अरु* शूर।
रज्जब तिन सौं रामजी, कहो कितीइक दूर॥[36]

भाव भक्ति सुकृत लिये, सत जत सुमिरण होय।
मनिषा देही चतुर्फल, पावे विरला कोय॥†[37]

सांई सुमिरन सत्य है, सद्गति सुमिरन हार।‡
जन रज्जब युग युग सुखी, वक्ता श्रोता पार॥[38]

सकल नाम जिव के सगे, जाप जिकर रट जंत।
रज्जब राम रहीम रत, मिल्या सु निर्मल मंत॥[39]

रज्जब टीका नाम को, वेद कुरान सु देहिं।
यूं तत्त्ववेत्ता§ त्याग सब, हरि सुमिरन कर लेहिं॥[40]

जन रज्जब गढ ज्ञान के, दीसै द्वै दरबार।
एकै सुमिरण संचरै, एक पुण्य व्यवहार॥[41]

सब ठाहर¶ सु उपाधि** है, सुमिरन में सु समाध।
रज्जब सु गुरु प्रसाद सौं, सो ठाहर सुख लाध॥[42]

---

* और
† **भाव...कोय**=श्रद्धा भक्ति के साथ अच्छे कर्म, सत्य का पालन, ब्रह्मचर्य और सुमिरन ये चार मनुष्य-देह प्राप्ति के फल हैं। इन्हें कोई विरला मनुष्य ही प्राप्त करता है।
‡ **सांई...हार**=परमात्मा के नाम का सुमिरन ही सच्चा साधन है, जो सुमिरन करता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है।
§ सार को जाननेवाला
¶ जगह
** दुख, कष्ट, विघ्न

राम नाम मूल मंत्र, सत्य नाम निरंजनं।
यथा ध्यावै तथा पावै, भजे भरिये भाजनं*॥[43]

रज्जब रटि जटि नामसौं, आठों पहर अखण्ड।
सुमिरन सम सौदा नहीं, निरख देख नौ खंड॥[44]

इस माया मंडाण मधि,† सुमिरन सम कछु नाँहि।
सो आधार उर राखिये, जन रज्जब जिव माँहि॥‡[45]

सुमिरन सितिया§ पीजिये, तो नख शिख शीतल होय।
दूजी ठाहर दहणि¶ सब, रज्जब देखो जोय॥[46]

सुमिरन सेवा मूल है, सब सुकृत शृंगार।
रज्जब शोभा सकल की, देखो सुमिरन हार॥[47]

निश्चय पर नावै नहीं, करणी बडा करार।**
जन रज्जब सब शोध कर, काढ्या सुमिरन सार॥[48]

लिख्या पढ्या सीख्या सुण्या, जीव कह्या जब राम।
मनसा वाचा कर्मना, येता ही है काम॥[49]

नाम निरंजन लीजिये, तन मन आतम माँहि।
जन रज्जब यूं सुमिरतों, परम पुरुष मिल जाँहि॥[50]

---

* पात्र भाव हृदय
† **इस...मधि**=इस मायामय रचना में।
‡ **सो...माँहि**=इस बात को अपने हित का आधार समझकर हमेशा अपने दिल में रखना चाहिए।
§ मिश्री
¶ जलन
** **निश्चय...करार**=संसार सागर को पार करने के लिए मज़बूत इरादे से बढ़कर कोई नाव नहीं और करनी से बढ़कर कोई शक्ति नहीं।

महाशूर सुमिरण करै, शिर की आश उतारि*।
जन रज्जब ता संत को, प्रत्यक्ष मिलैं मुरारि॥[51]

सुमिरण करे सु संत सही सुख पाय है।
मन वच कर्म त्रिशुद्ध जु हरि गुण गाय है॥
यहु आनन्द अस्थान सु मंगल जीव का।
परि हां रज्जब लीजे नाम रैन दिन पीव का॥[52]

रज्जब जाप जिकर करै, तिती बार जीव जाग।
सुमिरन भूले श्वास जिहिं, तब सूता पल लाग॥†[53]

सदा सनेह रहै सुमिरन सौं, भाग्य भजन में भीगा भाव।
जन रज्जब जप जीवन जीया, मानुष देही पाया डाँव॥[54]

सुमिरण कर सु संबाहि‡ मन, तन हि न सरकण देय।
रज्जब अज्जब काम यहु, जन्म सफल कर लेय॥[55]

सुमिरन सब सुख मूल स्थूल क्यों भूलिये।
तेज पुंज के होत भजन करि धूलि ये॥§
सीझै हिन्दू तुरक एक निज नाम सौं।
परि हां रज्जब रटिये राम प्राण की ठांव सौं॥[56]

* **महाशूर**...**उतारि**=सिर यानी अहंभाव को मिटाकर कोई शूरवीर ही सुमिरन में लग सकता है।
† **सुमिरन**...**लाग**=जितने साँस सुमिरन भूल जाने पर जाते हैं, समझो वह उस समय सोया हुआ है।
‡ रोक, सँभाल
§ **तेज**...**ये**=धूल के समान तुच्छ शरीर सुमिरन करने से तेज का पुंज हो जाता है।

कर्म हुँ कर्म सु नाम निज, जम का जम हरि जाप।*
रज्जब रटतों ना रहे, प्राणि पिंड के पाप॥[57]

साधु वेद सारे कहैं, सब तज सुमिरन लाग।
रज्जब रत रंकार यूं, मस्तक आया भाग॥†[58]

सुमिरण सुरति संभालना, अविगत याद अराध।
भजन यही भूले न प्रभु, रज्जब निज मग लाध॥[59]

महिमा सुनिये नाम की, साधों श्रुति भाखी।
जहां तहां संकट पड़े, सुमिरन की राखी॥[60]

नाम/शब्द

सुख अनन्त हरि नाम में, जाका वार न पार।
जन रज्जब आनन्द व्है, सुमिर्यों सिरजन हार॥[61]

सुरति माँहि सांई सुमिरि, नाम निरति मधि राखि।
जन रज्जब जग उद्धरैं, सद्गुरु साधू साखि॥[62]

युग युग राखी नाम की, संकट करी सँभाल।
रज्जब महिमा क्या कहैं, वेद न जाने व्याल॥[63]

रज्जब को अज्जब कह्या,‡ मेरे नाम सु लाग।
सकल पसारा झूठ है, मन वच कर्म तज भाग॥[64]

* **कर्म**...**जाप**=सभी कर्मों में सबसे श्रेष्ठ कर्म नाम का सुमिरन है। नाम सुमिरन मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करनेवाला है।
† **रज्जब**...**भाग**=मनुष्य-जन्म पाकर तेरा भाग्य उदय हुआ है, इसलिए तू नाम में लीन हो जा।
‡ **रज्जब**...**कह्या**=रज्जब को परमात्मा ने कहा।

नाम ठाम निज जीव को, सदा सजीवन वास।
रज्जब रहिये ठौर तिहिं, षट् ऋतु बारह मास॥[65]

नाम नाज जीवन सबहुं, आदम की औलाद।
और हु और अहार* है, देखर दीज्यो दाद॥[66]

बडहुं बडा सांई सही, ताहि बडे सत साध।
दोनों आये नाम में, रज्जब नाम अगाध॥[67]

नमो नाम महिमा अनंत, बोध न वाणी माँहि।
रज्जब कहिये कौन विधि, अकल† कह्या नहीं जाहि॥[68]

नाम हिं राखे प्राण पति, अपनी ठौर उठाय।
तो रज्जब ता नाम की, महिमा कही न जाय॥[69]

नाम प्रताप पषान तिरे जल, तो प्राणि तिरे क्यों नाँहि।
रज्जब रार्‌यों देखिये, फहम करो मन माँहि॥‡[70]

लाखों मांहीं सो लखै, जाका लीजे नांउ।
तो रज्जब मुख्य नाम है, देखो न बलि जांउ॥§[71]

रज्जब ऊपर रहम कर, हरिजी दीजे हाथ।
नाता राखो नाम का, नरक निवारण नाथ॥[72]

गहरे ज्ञान समुद्र में, चलै नाम की नाव।
रज्जब रज लागे नहीं, मिटै तपति के ताव॥[73]

---

* **और...अहार**=दूसरे प्रकार के जीवों का भोजन कुछ और ही है।
† निराकार
‡ **रज्ज्ब...माँहि**=अपनी आँखों से देखो और अपने अंतर में समझो।
§ **तो...जांउ**=नाम का अभ्यास मुख्य है। हे प्रभु! आप मेरी और देखते क्यों नहीं। मैं आप पर बलिहारी जाता हूँ।

नाम बिना जो और है, सो माँग्या मत देहु।
रज्जब चरणों राखिये, हरि अपना कर लेहु॥[74]

सब ही वेद विलोय कर, अंत दृढ़ावें नाम।
तो रज्जब जगदीश भज, इतना ही है काम॥[75]

जन रज्जब राखे बिना,* नाम न राख्या जाय।
जैसे दीपक जतन बिन, विसवाबीस† बुझाय॥[76]

राम नाम निज नाव गति, केवट ज्ञान विचार।
जन रज्जब दोन्यों मिलै, तबै पहुँचे पार॥[77]

नाम निरंजन जीव है, सो साधु मध्य श्वास।‡
तो रज्जब हरि क्यों रहे, बिन आये उन पास॥[78]

सब विधि नर के काम को, नाम निरंजन सत्ति।
जन रज्जब जो ज्यों भजे, ताकी मोटी मत्ति॥§[79]

अगणित कष्ट अनेक अज्ञान न कीजिये।
नाम बिना नहिं ठाम छलावै छीजिये॥[80]

नाम लेत निर्भय भये, साधू सुर नर शेष।
जन रज्जब लै लूटि है, मानुष देही देश॥[81]

नाम लेत नेकी उदय, बदी विसारत होय।
जन रज्जब जानी जुगति, प्रत्यक्ष दीसे दोय॥[82]

वोहित बिन क्यों समुद्र लंघिये, औषधि बिन क्यों रोग।
त्यों रज्जब निज नाम बिहुना, कदे न निपजे योग॥[83]

---

* **जन...बिना**=यत्न किए बिना। † निश्चित ही
‡ **नाम...श्वास**=नाम ही परमात्मा की आत्मा है, जो संतों के श्वास-श्वास में है।
§ **जन...मत्ति**=जो जैसे भी उसकी भक्ति करता है वह श्रेष्ठ बुद्धिवाला है।

काया काष्ठ में बंधी, देखो आज्ञा आगि।*
सो मुकती ह्वै रज्जबा, नाम अँगारे लागि॥[84]

प्राण पिंड तत्व पंच का, मन मनसा मल धोय†।
नाम नीर जल ज्ञान के, गृह सब पावन होय॥[85]

जन रज्जब राम हिं भजे, पाप रहे नहिं संग।
ज्यों तुपक की त्रास सुन, तरुवर तजे विहंग॥‡[86]

षट् दर्शन नाम हि कहैं, नाम हि वेद पुरान।
तो रज्जब नाम हि गहो, पाया भेद विनान§॥[87]

रज्जब भव समुद्र शिर पर धरी, नाम निरंजन नाव।
जाया चाहे पार को, सो प्राणी चढ जाव॥[88]

पिंड प्राणि रोगी नहीं, औषधि नाम न लेहि।
तो वैद्य विधाता क्या करै, दारू दर्शन देहि॥¶[89]

शब्द हुई सब सृष्टि, शब्द सब ही घट माँहीं।
शब्द रूप गुरुदेव, सुरति शिष बाहर नाँहीं॥
शब्द हि वेद कुरान, शब्द सब शब्द पढ़ावे।
शिव रु शक्ति का भेद, शब्द शब्द हि सु बतावे॥
प्रकट शब्द संयोग लग, पुनि वियोग गुप्त हि रहे।
'रज्जब' कहिये कौन से, शब्द भेद विरला लहे॥[90]

* **काया...आगि**=जैसे आग लकड़ी के अंदर छिपी होती है, किंतु अंगारे के साथ छूने पर ही छिपी आग प्रकट होती है।
† **मन...धोय**=मन की इच्छाओं और तृष्णाओं की मैल धुल जाती है।
‡ **ज्यों..विहंग**=जैसे बंदूक की आवाज़ सुनते ही पेड़ पर बैठे पक्षी उड़ जाते हैं।
§ भाव विशेष ज्ञान
¶ **तो...देहि**=भाव अगर जीव के दिल में विरह ही नहीं तो ऐसे जीव को वैद्यरूपी विधाता दर्शनरूपी दवाई कैसे दे?

शब्द मिले संसार, शब्द सुन पक्ष समावे।
शब्द धरे सब स्वांग, शब्द अड़सठ को धावे॥
शब्द करे षट् कर्म,* शब्द सब देव अराधे।
शब्द संग कुल कष्ट, शब्द साधन सब साधे॥
शब्द मांहिं सारे भरम, शब्द सँग संकट परे।
जन 'रज्जब' निज शब्द का, शोध साधु विरला करे॥[91]

नाम सुप्रकास – धुनि-ध्यान

रज्जब एक हि ध्यान में, नर नारायण होय।
मनसा वाचा कर्मना, कीट भृंग ले जोय॥[92]

परम पुरुष का ध्यान धर, जैसे चन्द्र चकोर।
जन रज्जब चारों पहर, मेली पलक न कोर॥[93]

कच्छपी दृष्टि सु ध्यान धर, अकल पुरुष की ठौर।
तो रज्जब सहजै मिले, परम पुरुष श्री मौर॥[94]

गऊ जाय वन खंड में, धरे वत्स पर ध्यान।
यूं रज्जब ह्वै राम सौं, तो पहुँचे हरि थान॥[95]

जैसे नटनी बरत चढ़, धरे कौन विधि ध्यान।
त्यों रज्जब रम राम मधि, मिले प्राण पति प्रान।[96]

ध्यान म्यान माँही रहे, राम काम तरवारि।
रज्जब रुचि के हाथ में, जो जाने सो धारि॥†[97]

* **षट् कर्म**=ब्राह्मणों के छः कर्म यज्ञ करना, यज्ञ कराना, पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, दान देना।
† **ध्यान...धारि**=जैसे म्यान में तलवार रहती है, वैसे ही ध्यान में परमात्मा और काम दोनों ही रहते हैं। जिसका रुझान जिस तरफ़ होता है, वह उसी तलवार को हाथ में धारण करता है।

नर नारायण सौं बड़ा, प्रकट नाम परकास।
दोन्यों आगे नाम के, सेवक स्वामी दास॥[98]

नाम सु दीपक राग है, जिहिं ज्योति प्रकाशै।
आन कष्ट कुल रागिनी, तिन तिमिर न नाशै॥*[99]

जिहिं घट नौबत नाम की, सो प्रकटे संसार।
जन रज्जब जगमग रह्या, सेये सिरजन हार॥[100]

यहु अवसर बहुर्‌यों नहीं, मन सुन ध्वनि लाई।
रज्जब ढील न कीजिये, उर ऊंघ उठाई†॥[101]

राम नाम की गर्ज सुन, बधै वंश ज्यों भाव।
रज्जब रीझ्या देखकर, अति आतुर गति चाव‡॥[102]

अजपा जाप

रज्जब जप जप जन थके, अजपा जपा न जाय।
अगह अंभ ज्यों आरसी, आख्यूं सो न गहाय॥§[103]

मुख सौं भजै सु मानवी, दिल सौं भजै सो देव।
जीव सौं जपै सु ज्योति में, रज्जब साँची सेव॥[104]

रज्जब रटतों जीव ही, चित चातक सम जाप।
मक्र वक्र बोले नहीं, आप हरत हरि आप॥¶[105]

---

* **आन...नाशै**=अन्य साधन उन रागिनियों के समान हैं जिनसे अँधेरा नष्ट नहीं होता।
† **उर...उठाई**=मन को नींद से जगा।
‡ **अति...चाव**=उत्साह और व्याकुलता बढ़ती जाती है।
§ **अगह...गहाय**=जो पानी ग्रहण नहीं किया जा सकता वह दर्पण में आँखों से दिखाई तो देता है, परंतु उसे ग्रहण नहीं कर सकते।
¶ **मक्र...आप**=मछली अपने मुख से पानी नहीं पीती, फिर भी जल उसकी प्यास बुझा देता है, इसी तरह अजपा जाप की अवस्था में जीव को परमात्मा मिल जाता है।

रज्जब रसना रहित रस, पीवे प्राण प्रवीन।
वक्र बिना ज्यों वारि सुख, रोम रोम ले मीन॥*[106]

वक्र बैन वायू रहित,† होय सु अजपा जाप।
रज्जब मन उनमनि लगे, प्रकटे आपे आप॥[107]

मुख मारुत सेती अगम, सुमिरन सुरति मझार।‡
रज्जब करसी एक को, अजपा जप व्यवहार॥[108]

स्वप्ने मन सुमिरन करे, लगे नहीं तन ताप।
अचेत उदर अरभक वधै, यूं है अजपा जाप॥§[109]

मन पवन अरु सुरति को, आतम पकड़ै आप।
रज्जब लावै तत्त्वसौं¶, यूं ही अजपा जाप॥[110]

ब्रह्माण्ड पिण्ड मन प्राण तज, सुख में सुरति समाय।
रज्जब अजपा जाप यहु, नर देखो निरताय॥[111]

कछी पंछी हेत ले,** अंडे क्यों उपजंत।
रज्जब राम कहे बिन ऐसे, अजपा जाप करन्त॥[112]

---

* **वक्र...मीन**=मछली अपने मुख से पानी पिये बिना ही अपने रोम-रोम से जल का सुख पाती है।
† **वक्र...रहित**=मुख, वचन और साँसों के बिना।
‡ **मुख...मझार**=मुख और श्वास की गति से परे अजपा जापरूपी सुमिरन सुरत के द्वारा किया जाता है।
§ **अचेत...जाप**=जैसे माता के गर्भ में बालक बढ़ता रहता है परंतु उसे पता नहीं चलता कि वह किस क्षण कितना बढ़ा है, इसी प्रकार बिना शरीर की सुधि के ही अजपा जाप निरंतर चलता है।
¶ सार तत्त्व से
** **कछी...ले**=प्रेमपूर्ण ध्यान के द्वारा कछुवी और कूँज।

जीते-जी मरना

मरिबा मुंहडे कहण को, जीवन मूरि निधान।*
रज्जब रहे सु मरि रहे, ऐसे समझ सयान॥[113]

ज्यों ज्यों तन मन मारिये, त्यों त्यों जीवै जीव।
इस कसणी कल्याण है, रज्जब रंजे पीव॥†[114]

जे साधू मृतक भये, तिनके बल‡ नहिं कोय।
जन रज्जब दृष्टान्त को, जली जेवड़ी जोय॥§[115]

रज्जब दीसै एक से, जीवित मृतक दास।
बिन दीपक दीपक यथा,¶ हीरे का सु प्रकाश॥[116]

जैसे मारे सार सौं,** महा कटै तन रोग।
त्यों रज्जब मृतक मिल्यों, लहै अमर जिव जोग॥††[117]

* **मरिबा..निधान**=जीते-जी मरना केवल मुँह से कहने की बात नहीं है, यह तो संजीवनी का ख़ज़ाना है।
† **इस...पीव**=जो जीव इस कसौटी पर खरे उतरते हैं, उनका कल्याण होता है, प्रीतम उन पर रीझ जाता है।
‡ टेढ़ापन
§ **जन...जोय**=जैसे जली हुई रस्सी में बल दिखाई देते हैं परंतु वास्तव में अब उसमें कोई गाँठ नहीं दी जा सकती, इसी प्रकार साधक दिखने में तो पहले जैसा ही लगता है परंतु उसके अंदर से कुटिलता पूरी तरह नष्ट हो चुकी होती है।
¶ **बिन...यथा**=दीपक के बिना या दीपक के रहते हुए।
** **जैसे...सौं**=जिस प्रकार भस्म किए गए लोहे से।
†† **त्यों...जोग**=वैसे ही जीते-जी मरने की विधि जाननेवाले संत की संगति से परमात्मा से मिलाप होता है और अमर जीवन मिल जाता है।

मन अमली इस मांड का

मन अमली इस मांड का, उनमनि कनें न जाय।
रज्जब तजि जीवन जुगति, मरणै रह्या समाय॥*[1]

मन मोत्या घर घर फिरै, सु स्थिर बैठे नाँहिं।†
रज्जब राम हिं क्यों मिले, कूकर की मति माँहिं॥[2]

रज्जब राखैं कौन विधि, मन में मौज अपार।
एक मौज जे मारिये, तो उर‡ उठैं हजार॥[3]

यहु मन बांका जब लगै, तब लग ज्ञान न कोय।
रज्जब पोस्ताहु पहुप, विगसत सूधा होय॥§[4]

दशों दिशा मन फेर करि, जहां उठै तहँ राखि।
जन रज्जब जगपति मिलैं, सद् गुरु साधू साखि॥[5]

मन मैगल मारे बिना, कहो मररि क्यों जाय।¶
रज्जब मिले महावतहिं, जब हि मार बहु खाय॥[6]

* **मन...समाय**=मन संसार के पदार्थों का इतना आदी हो गया है कि समाधि की ओर उसका ध्यान जाता ही नहीं। परिणाम यह है कि जीव अमर जीवन प्राप्त करने की युक्ति छोड़कर बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में फँसा रहता है।
† **मन...नाँहिं**=मनरूपी कुत्ता जगह-जगह घूमता है, एक जगह टिककर नहीं बैठता।
‡ मन में
§ **रज्जब...होय**=जैसे पोस्त का फूल खिलने पर सीधा हो जाता है।
¶ **मन...जाय**=मनरूपी हाथी को भजन की मार खिलाए बिना उसकी बुरी आदतें कैसे छूट सकती हैं।

तन नागा बहुतै करैं, मन नागा नहिं होय।
रज्जब मन नागे बिना, कारज सरे न कोय॥[7]

मंगित मन ठाहर नहीं, नित तृष्णा मग पग्ग।
सब दिशि चगता देखिये, तो कहिये जाचग्ग॥*[8]

रज्जब सब गुण सीखिया, जे मन राख्या ठौर।
मन वच कर्म सीझ्या सही, जे उर उठे न और॥[9]

रज्जब मनवा भूत है, सदा सु उलटे पाँव।
देखा गृह वैराग्य में, खेले अपना दाँव॥†[10]

यहु मन मृतक देखि कर, धीज न कीजे नेह।‡
रज्जब जीवे पलक में, ज्यों मीडक जल मेह॥§[11]

तन में मन चंचल सदा, ज्यों मोती मधि थाल।
जन रज्जब क्यों राखिये, यहु अंतर गत साल¶॥[12]

मन धन की चंचल विरति, गाड़्या रहै न ठौर।
जन रज्जब हैरान है, देखि दशों दिशि दौर॥[13]

यहु मन भांड भण्डार में, राखै रंग अनेक।**
रज्जब काढै समयसिरि जुदी जुदी रँग रेख॥[14]

---

* **मंगित**...**जाचग्ग**=माँगनेवाले का मन स्थिर नहीं होता, रोज़ तृष्णारूपी मार्ग पर लगा रहता है। इसे सब दिशाओं में भटकता देखकर ही तो इसे मँगता कहते हैं।

† **देखा**...**दाँव**=भले ही कोई घर में रहे या घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों में चला जाए, मन हर जगह अपना दाँव खेलता है।

‡ **यहु**...**नेह**=मन को क़ाबू में आया देखकर इस पर विश्वास न करो।

§ **रज्जब**...**मेह**=जैसे वर्षा के जल में बेजान-सा मेढ़क पलभर में जी उठता है, वही अवस्था मन की है।

¶ **यहु**...**साल**=यह चिंता काँटे की तरह अंदर चुभती है।

** **यहु**...**अनेक**=यह मन मसख़रे की तरह है जिसने लोगों को हँसाने के लिए कई युक्तियाँ रखी होती हैं यानी तरह-तरह के स्वाँग रचता है।

रज्जब रहै न एक रंग, मन में मोटी आंट*।
पल पल में पलटै मते, जैसी विधि किरकांट†॥[15]

कूकर काक करंक परि, पाक पूरि तजि जाँहिं।‡
त्यों रज्जब मन की विरति, तजि अमृत विष खांहिं॥[16]

रज्जब मन मुक्ता काचे गलैं, संसार समुद्र जल दोष।
निपज्यो निर्भय सो तहां, सद्गुरु सीख सु पोष॥§[17]

थकित होत पाका सु मन, ज्यों कण हांडी मांहिं।
काचा कूदै ऊछलै, निश्चल बैठे नांहिं॥[18]

जन रज्जब मन जींगणा, चमकै अरु छिप जाय।
पल में ज्ञाता पल गतै, जे देख्या निरताय।[19]

गृह दारा सुत वित्त सौं, यहु मन भया उदास।
जन रज्जब राम हिं रच्या, छूट्या जगत निवास॥[20]

तन मारै मन ना मुवा, देखो भूत मसाण¶।
अज्ञान कष्ट आतम सु यूं, जन रज्जब पहचाण॥[21]

कुल कुटुम्ब कैंवछ वनी,** मन मरकट तहँ जाय।
साधु शब्द मानें नहीं, मरसी मूढ खुजाय॥[22]

---

* दाँव-पेच

† **जैसी**...**किरकांट**=गिरगिट की तरह रंग बदलता है।

‡ **कूकर**...**जाँहिं**=कुत्ता और कौआ पकवानों से भरे बर्तन को छोड़कर मरे हुए जानवरों के गंदे अस्थिपंजर पर ही जाते हैं।

§ **निपज्यो**...**पोष**=जैसे पके हुए मोती को समुद्र का खारा जल गला नहीं सकता, वैसे ही सतगुरु के ज्ञान से पका मन संसार में निडर होकर रहता है।

¶ **देखो**...**मसाण**=श्मशान में भूत बनकर प्रकट होता है।

** **कुल**...**वनी**=वंश, कुटुंब कौंच (खुजली पैदा करनेवाली फली) की तरह है।

रज्जब सेवा संत की, मन मैले करि कीज।
सो कृषि कैसे नीपजे, भून जु बाह्या बीज॥*[23]

बाजीगर सौं क्यों मिलै, मन मरकट बिन मार।†
जन रज्जब खेले तबै, जब मारैं बारम्बार॥[24]

रज्जब सूता पांव पल, पीटे निद्रा नाश।‡
तो मन सूता युगन का, सो क्यों जागे बिन त्रास॥[25]

मन लागे नहिं नाम सौं, बातैं ब्रह्म सु होय।
रज्जब मन की लगन बिन, सीझ्या सुण्या न कोय॥[26]

कथणी कथ्यों न मन मरै, नवै न नौ की कोर।§
ज्यों रज्जब बरड़ात¶ सुन, वित्त न छोड़ै चोर॥[27]

मन हस्ती मैला भया, आप बाहि शिर धूरि।
रज्जब रज क्यों ऊतरै,हरि सागर जल दूरि॥[28]

मन मरकट मूके नहीं, माया मूंठी मांहिं।**
रज्जब केते उठि गये, इन यहु त्यागी नाँहिं॥[29]

मन उनमनी लागा रहै, माया मध्य न जाय।
ब्रह्म अग्नि में जारै बीज हिं,†† बहुरि उगै नहिं आय॥[30]

---

* **सो**...**बीज**=भुने हुए बीज से फ़सल कैसे प्राप्त की जा सकती है?
† **बाजीगर**...**मार**=भला बंदर मार पड़े बिना बाज़ीगर की बात कैसे मान सकता है।
‡ **रज्जब**...**नाश**=पलभर में सोनेवाला पाँव भी बिना पीटे सचेत नहीं होता।
§ **कथणी**...**कोर**=केवल बातें बनाने से मन नहीं मरता और न ही पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और चार अंतःकरण भक्ति की ओर झुकते हैं।
¶ बड़बड़ाना
** **मन**...**मांहिं**=जैसे बंदर चनों से भरी हुई अपनी मुट्ठी को तंग मुँह की हाँडी में फँसा लेता है, उसी प्रकार मन ने भी शरीररूपी हाँडी के भीतर माया को पकड़ा हुआ है।
†† **ब्रह्म**...**हिं**=ब्रह्म-अग्नि में जला बीज दोबारा नहीं उगता।

मन हस्ती मैमंत शिर, गुरु महावत होय।
रज्जब रज डारे नहीं, करै अनीति न कोय॥[31]

रज्जब परिहर* राम रस, मन भुगते निज काम।
सूवर सूंधहिं क्या करे, विष्टा में विश्राम॥†[32]

मुख माने मन में अमन, दिल दुविधा नहिं जाय।
रज्जब सीझे कौन विधि, इहिं व्यभिचारी भाय॥[33]

तन मन पंचों पिशुन परि, प्राणि एक ये सात।‡
रज्जब क्यौं करि मारिये, क्यों रसि आवै बात॥[34]

मकरी चकरी तार पर, अह निशि आवे जाँहिं।
मन मनसा ऐसे फिरहिं, कैसे पति पतियाँहिं॥[35]

मन मुख मानुष भूत पशु, गुरु मुख ज्ञाता देव।
रज्जब पाया प्राणने, पंच खानि का भेव।§[36]

मन मनसा इन्द्रिय गुण माँखी, हरि सुमिरण हरताल।
गुरु की दया दिनाई पाई, दुख दायों का काल।[37]

मन इन्द्री जिन वश करी, मार्‌या मदन भुवंग।
सो रज्जब सहजे मिलै, परम पुरुष के संग॥[38]

मन की प्यास प्रचंड न जाई,
माया बहुत बहुत विधि विलसै, तृप्ति नहीं निरताई॥

---

* त्यागकर
† **सूवर**...**विश्राम**=सूअर सुगंधित वस्तुओं का क्या करेगा? उसे तो गंदगी में ही आराम मिलता है।
‡ **तन**...**सात**=अकेली जीवात्मा सात दुष्टों—तन, मन और पाँचों विकारों के फंदे में फँसी हुई है।
§ **रज्जब**...**भेव**=रज्जब कहते हैं, उस प्राणी ने पाँचों खानियों का भेद पा लिया।

ज्यों जलधार असंख्य अवनि थल, परत न सो ठहराई।*
तैसे यहु मन भर्‌या भूख सौं, देखि परखि सुधि पाई॥
अशन वशन बहु होमि अग्नि मुख, नहिं संतोष शिलाई।†
ऐसी विधि मनकी सु क्षुधा है, बुझती नांहिं बुझाई॥
भूख प्यास संग ले सूता, सो स्वप्ने न अघाई।
इहै स्वभाव रहै मन मांहीं, तृष्णा तरुण बधाई॥
मन माया सौं कदे ना धापै, सद्‌गुरु साखि सुनाई।
जन रज्जब याकी यहु औषधि, राम भजन कर भाई॥[39]

मन और माया

काल काया सौं काढ ही, पै माया कढै न मन्न।‡
सो विरक्त ह्वै कौन विधि, समझो साधू जन्न॥[40]

जब मन को माया मिले, तब मन का छः रंग§।
रज्जब माया चलि गई, सहज भये रंग भंग॥[41]

जब मन को माया मिले, तब बहुत नचावे नाँच।
रज्जब माया चलि गई, तब निश्चल बैठे पाँच॥[42]

जब मन को माया मिले, तब जिव चाहै भोग।
रज्जब माया चलि गई, तब जीव उपज्या जोग॥[43]

* **ज्यों...ठहराई**=जैसे पृथ्वी पर असंख्य जलधाराएँ पड़ती हैं, किंतु उस पर ठहरती नहीं।
† **अशन...शिलाई**=जैसे अग्नि में बहुत आहुतियाँ डालने पर वह संतुष्ट होकर शीतल नहीं होती, इसी प्रकार मन की भूख स्वादिष्ट भोजन खाने पर और सुंदर वस्त्र पहनने पर भी शांत नहीं होती।
‡ **काल...मन्न**=मृत्यु शरीर को तो आत्मा से अलग कर देती है पर माया को मन से अलग नहीं कर पाती।
§ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या के छः रंग।

मन तैं माया काढणी, ज्यों ब दही तैं घीव।
जन रज्जब बल बुद्धि उस, महा विवेकी जीव॥[44]

माया पानी दूध मन, मिले सुमुहकम* बंधि।
जन रज्जब बलि हंस गुरु, सोधि लहीसो संधि।[45]

माया मांहीं ब्रह्म पाइये, ब्रह्म मध्यतैं माया।
फलै सु मन की कामना, रज्जब भेद सु पाया॥[46]

मन चंचल माया मिलै, निश्चल लागैं नाँहिं।
जन रज्जब पाया परखि, देख्या दोनों ठाँहिं॥[47]

मन मरकट माया चिरम, तृष्णा शीत न जाय।
या परि वानर वृन्द मिल, सगा सगे को खाय॥†[48]

रज्जब मन माया सब ठौर है, सुमति कुमति का फेर।
वह पहुंचावे स्वर्ग को, वहिं नरक न जातां बेर॥[49]

माया बांध्यों मन बंधै, खोल्यों खुलता जाय।
रज्जब ग्रह उग्रह कह्या,‡ नर देखो निरताय॥[50]

मन माया सौं बंधि करि, निश्चल कदे न होय।
रज्जब पिंडा चाक पर, अस्थिर सुन्या न कोय॥§[51]

* मज़बूती से
† **मन...खाय**=वन में वानर गुंजाओं (लाल काले रंग के बीज) को इकट्ठा करके उसे अग्नि समझकर, उसके चारों ओर बैठ जाते हैं। इससे उनका शीत नहीं जाता बल्कि उनके समूह की गर्मी से शीत कम होता है। अगर कोई और वानर बीच में आकर बैठना चाहे तो वे एक दूसरे को काटने लगते हैं, वैसे ही मन माया का संग्रह करता है, उससे उसकी तृष्णा नहीं जाती बल्कि संबंधी एक दूसरे से लड़ते हैं।
‡ **रज्जब...कह्या**=जैसे ग्रहण लगने से प्रकाश रुक जाता है और ग्रहण से मुक्त होने से प्रकाश दिखाई देने लगता है, वैसे ही मन-माया का संबंध है।
§ **रज्जब...कोय**=चक्के पर ढेला नहीं ठहर सकता।

माया माँहिं मिल्या मन खेलै, कहिबे को मुख केवल राम।
सांई नांहिं मिले इन बातें, रज्जब सर्‌या न एकै काम॥[52]

जो माया मुनिवर गिलै, सिध साधक से खाय।*
ता माया सौं हेत करि, रज्जब क्यों पतियाय॥[53]

* **जो...खाय**=जो माया बड़े-बड़े मुनियों को भी निगल जाती है, सिद्ध-साधकों को खा जाती है।

जम जालिम का बाण

काल किसी छोडै नहीं, सुर नर सब ब्रह्मण्ड।
जन रज्जब दृष्टांत को, यथा अग्नि वन खंड॥[1]

रज्जब कोल्हू काल के, सब तन तिली समान।
सो उबरै कहि कौन विधि, जो आये विच घान॥*[2]

ज्यों आभा आतुर उठैं, विलय होत नहिं बार।†
त्यों रज्जब तन काल वश, छिन में होसी छार॥[3]

साहिब बिन साहिब किया, सो रज्जब सब जाय।‡
काल सहित सब काल मुख, जे देखा निरताय॥[4]

निशि दिन जामण मरण में, चंद सूर आकाश।
त्यों जीव सहित सब सानि कर, काल करै इक ग्रास॥[5]

रज्जब मुये जु मारते, विनशे वैरी पंच।
तब ताको लागै नहीं, जरा मरण जम अंच॥§[6]

अंतक मुख आकार सब, यहु भोला नाहीं।¶
जन रज्जब जगदीश भज, जग जाते मांहीं॥[7]

* **सो...घान**=जिसकी भी इस कोल्हू में डाले जाने की बारी आ गई फिर वह किस तरह बच सकता है?
† **ज्यों...बार**=जैसे बादल शीघ्र उठते हैं, उन्हें लोप होने में भी देर नहीं लगती।
‡ **साहिब...जाय**=प्रभु ने अपने सिवाय जो कुछ भी रचा है वह सब एक दिन नष्ट हो जाएगा।
§ **तब...अंच**=तब उसको, बुढ़ापा, मरण और यम का दुख नहीं लगता।
¶ **अंतक...नाहीं**=दुनिया के सब प्राणी काल के मुख में जाते हैं, वह इतना भोला नहीं कि किसी जीव को छोड़ दे।

सिरजनहार करै त्यों होय

सिरज्या सिरजन हार का, मेट न सकई कोय।
रज्जब दुरमति दोष धरि, बादि बकैं क्या होय॥ *[1]

रज्जब रूठे तूठे किसी के, घटै बधै कछु नाँहिं।
राम रच्या सो होयगा, लिखा जु मस्तक माँहिं॥[2]

रज्जब दुख सुख देखिकर, कीजे नहीं उचाट।
एक हु के पाइन पदम, एक हु नहीं ललाट॥ †[3]

इक कौड़ी कौड़ी को फिर ही, इक बैठे कोड़ि न लेही।
रज्जब भूत हुं भाग्य भिन्न, कहो पटतर क्यों देही॥ ‡[4]

रज्जब सांई लग सुकृत सदा, सुखी सुकृति होय।
पलटा पूरे पुरष का, मेट न सकई कोय॥[5]

भावै कुंभहिं कूप भरि, भावै भरो समुंद।
जन रज्जब परवान परि, अधिकी चढै न बुंद॥ §[6]

---

* **रज्जब**...**होय**=दुर्बुद्धि वाले लोग दोष मढ़कर व्यर्थ ही बोलते हैं।

† **एक**...**ललाट**=किसी के पैर पर पद्म का चिह्न होता है (बड़े ऊँचे भाग्यवाला) तो कोई दूसरा मस्तक पर भाग्य लिखवा कर ही नहीं आता।

‡ **रज्जब**...**देही**=प्राणियों का भाग्य अलग-अलग होता है, उन्हें बराबर का दर्जा कैसे दिया जा सकता है?

§ **जन**...**बुंद**=उसके माप से अधिक एक बूँद भी नहीं आएगी।

दुख सुख साँई का दिया, जीवों पाया सोय।
तो देखि दरिद्री ईश्वर हिं, क्यों सरतंखा होय॥ *[7]

विभूति बंदगी हरि हुकम,† नरहुं प्राप्त जो होय।
जन रज्जब थोड़ी बहुत, दोष न दीजे कोय॥[8]

रज्जब राजा किन किये, कोने किये सु रंक।
ये अक्षर अविगत लिखे, निरखि ललाट हु अंक॥ ‡[9]

भाग्य भले गुरु ज्ञान पाइये, भाग्य भले सत संगा।
भाग्य भले सौं भक्ति उपजै, भेटै अविगत अंगा॥[10]

भाग्य भलाई ऊपजै, भाग्य बुराई भंग।
उभय अंग आतम लहैं, जे हरि देहि उमंग॥ §[11]

सिरजनहार करै त्यों होय, जीव विचारे बल नहिं कोय॥
इक राणा इक रंक उपाये, भले बुरे ज्यों भगवत भाये॥
एकों पाये छत्र सिंहासन, एक हुं हाथ न फूटा बासन॥
एकों पीछे पलैं हजार, एकों पाय नहीं पैजार॥
इक ईश्वर विलसै सुखराशी, एक दरिद्री दुख की पाशी॥
आज्ञा अंक समझि सुख पावै, जन रज्जब सबके मन भावै॥[12]

---

* **तो**...**होय**=हे दरिद्री! भक्ति द्वारा ईश्वर को पाने की कोशिश कर, क्यों दुखी हो रहा है?

† **विभूति**...**हुकम**=हरि की आज्ञा से जो संपत्ति और भक्ति प्राप्त होती है।

‡ **ये**...**अंक**=ये भाग्य के लेख परमात्मा ने लिखे हैं, मस्तक पर अंकित उस लेख को देख।

§ **भाग्य**...**उमंग**=यदि परमात्मा अपनी रज़ा से दे तो ही जीव की भलाई होती है और बुराई नष्ट हो जाती है।

तन धोया फिर तीरथों, मैल रह्या मन मांहिं

तन धोया फिर तीरथों, मैल रह्या मन मांहिं।
रज्जब पातक प्राण में, क्यों उर के अघ जांहिं॥ *[1]

नमो नाम सम कुछ नहीं, साधु वेद मत माँहि।
तीरथ व्रत न योग यज्ञ, पटतर कहे न जाँहि †॥[2]

अर्ध नाम ‡ सम कुछ नहीं, जप तप तीरथ दान।
षट् कर्म कष्ट रु साधना, समसरि § नाम न जान॥[3]

सदा पिंड पाणी सौं धोवैं, ऐसे प्राण न उज्वल होवैं।
जल चर देखि रहैं जल मांहीं, ¶ रज्जब मैल न उनके जाँहीं॥[4]

आंखों अन्ध अज्ञान गति, काजल तिलक बनाय।
रज्जब रामति राम का, दर्शन किया न जाय॥[5]

---

* **रज्जब...जांहिं**=पाप करने की वृत्ति तो प्राणी के अंदर है, स्नान करके मन के पाप कैसे जा सकते हैं?

† **पटतर...जाँहि**=इनकी नाम से तुलना नहीं की जा सकती।

‡ अंतर में प्रकट होनेवाला नाम

§ समान

¶ **जल...मांहीं**=जल में रहनेवाले जितने जीव दिखाई देते हैं।

जे भेष धरे भव पार है, दरशण दे दीदार।
यूं रज्जब साँई मिले, तो सभी पहुंचे पार॥[6]

सांई लहिये साँच में, ता में फेर न सार।
तो रज्जब क्या धारिये, इन भेषों का भार॥[7]

नाम बिना निर्मल नहीं, बहु विधि करै उपाय।
रज्जब रज किस की गई, दह दिशि तीरथ न्हाय॥[8]

दह दिशि दौड़ै दूरि को, भ्रम भ्रम तीरथ न्हाहिं।
रज्जब राम न सूझ ही, जो इस काया माँहिं॥[9]

मनिष मीन सम व्है रहे, * अड़सठ तीरथ न्हाय।
पै रज्जब रज नहिं ऊतरै, दुरमति वास न जाय॥[10]

पिंड प्राणि पलटै नहीं, प्रतिमा पूजे लोय।
दास देव देखैं दुनी, रज्जब रजू न होय॥ †[11]

तिलक रहित दे तिलक तन, देखो कर सु कपाल।
रज्जब साकत भक्त का, वेत्ता करो विचार॥ ‡[12]

---

* **मनिष...रहे**=मनुष्य मछली के समान होकर।

† **पिंड...होय**=अपने ध्यान को शरीर के अंदर पलटने के बजाय बाहर प्रतिमा की पूजा करते हैं। पत्थर, जड़-पदार्थ मनुष्य के दास हैं जिन्हें दुनिया परमात्मा के रूप में पूजती है। इससे परमात्मा कभी राज़ी नहीं हो सकता।

‡ **तिलक...विचार**=जिसने (शरीर से अपनी चेतना को समेटकर तीसरे तिल पर एकाग्र करके) सच्चा तिलक नहीं लगाया, लेकिन फिर भी वह अपने हाथ से मस्तक पर तिलक लगाता है, वह तो परमात्मा का भक्त नहीं बल्कि मनमुख है। ऐ ज्ञानीजनो! इस बात पर गहराई से विचार करो।

बांने परि बांना करै,* बीच नहीं विश्वास।
रज्जब रचना राम की, रचे न मूरख दास॥[13]

जप तप संयम दान शीश करवत धरैं।
साधन कष्ट अनेक देह दहणारथ† फिरैं॥
प्रकट गुप्त पुनि और नाम बिन कीजिये।
परि हां रज्जब बिन भगवंत कदे नहीं सीझिये॥[14]

* **बांने...करै**=ख़ुद परमात्मा के बनाए हुए शरीररूपी क़ुदरती पहरावे पर परमात्मा का भक्त कहलाने के लिए ख़ास क़िस्म के वेश का दिखावा करता है।
† चारों ओर जलती हुई अग्नि तथा ऊपर से सूर्य का ताप सहन करनेवाला तप।

दिल दीये दिल पाइये

प्रेम

दिल दीये दिल पाइये, दिल ही सौं दिल लेय।
ज्यों व जमी जड़ मेल ही, त्यों धर तरु रस लेय॥*[1]

प्यार प्रीति हित स्नेह मुहब्बत, पंच नाम इक प्रेम।
उभय अंग एकठ करहिं,† मनसा वाचा नेम॥[2]

हरि जी गाहक हेत के, नारायण लेहिं नेह।
तो मनसा वाचा कर्मना, संतो करो सनेह॥[3]

पारस परसत लोह, सौंघे सौं महँगा भया।‡
तो क्यों न करीजे मोह, रज्जब साँचे साधु सौं॥[4]

सुर नर देवी देवता, सब जग देख्या जोय।
रज्जब नाहीं राम सा, सगा सनेही कोय॥[5]

रज्जब रमि रमि राम सौं, पीवै प्रेम अघाय।
रसिया रसमय ह्वै रह्या, सो सुख कह्या न जाय॥[6]

हरि दरिया में मीन मन, पीवै प्रेम अगाध।
महा मगन रस में रहै, जन रज्जब सो साध॥[7]

* **ज्यों...लेय**=जैसे-जैसे वृक्ष की जड़ ज़मीन में फैलती है, उसे पानी मिलता जाता है।
† **उभय...करहिं**=दोनों को एक कर देता है।
‡ **पारस...भया**=पारस के स्पर्श से सस्ता लोहा महँगा सोना बन जाता है।

रज्जब पावक प्रेम है, कंचन आतम राम।
गाल मिलावै दुहिन* को, प्रेम करे यह काम॥[8]

प्रेम प्रीति हित नेह के, रज्जब दुविधा नाँहिं।
सेवक स्वामी एक ह्वैं, आये इस घर माँहिं॥[9]

प्रेम प्रीति हित नेह की, रज्जब ऊबट बाट†।
सेवक को स्वामी करहि, स्वामी सेवक ठाट॥[10]

राम सौं रत्ता राम सौं मत्ता, राम रसायन प्राण पीवता॥
राम सौं लीना राम सौं भीना, राम रटन उर अन्तर कीना॥
राम सौं संगा राम सौं रंगा, राम सनेही मित्र अभंगा॥
राम सु मीठा सबमें दीठा, अंतर्यामी आतम ईठा॥
राम सु प्यारा प्राण हमारा, जन रज्जब कह फेर न सारा॥[11]

मेरो मन रातो माई, प्राण पिया के संग।
मौज अनेक अनूपम आछी, चोल चरण के रंग॥‡
महर मजीठ रहम की रैणी, मन बुधि सुरति सुरंग।§
रज्जब लाल लाल की ल्यौ मिल, जुग जुग अचल अभंग॥[12]

पीव हूं तेरे रंग रँगी,
परम सनेह लग्यो मन मेरे, सुन सुन गल्लां चंगी॥
तन-मन प्राण धरहुं तुम आगे, चूक न राखूं अंगी।

* दोनों
† **ऊबट बाट**=उलटी राह
‡ **मौज...रंग**=अपना तनरूपी चोला उनके चरणों के प्रेम में रँगकर मुझे अनुपम आनंद अनुभव हो रहा है।
§ **महर...सुरंग**=प्रेम के मजीठी रंग में और दया की हल्दी से मन, बुद्धि और आत्मा पूरी तरह रँग गए हैं।

सकल वंजाय मोह माया मन, सजण सांण उमंगी॥*
निशि दिन अंग संग सुख पाऊं, शून्य अधार सर्वंगी†।
रज्जब धन तेरे रंग रंगत, दायम कायम संगी॥‡[13]

विरह

साधु शब्द श्रवणों सुने, विरह वियोगी बैन।
तब तैं वेधी आतमा, रज्जब परे न चैन॥[14]

कबहुँ सो दिन होयगा, पीव मिलेगा आय।
रज्जब आनँद आतमा, त्रिविधि ताप तन जाय॥[15]

विरहनि बिहरे रैन दिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या विरह अपार॥[16]

बादल विरह वियोग के, दर्द दामिनी माँहिं।
रज्जब घट ऐसी घटा, भैझड़§ भागे नाँहिं॥[17]

रज्जब कहिये कौन सौं, इस विरहा की बात।
मानहुँ रावण की चिता, अह निशि नहीं बुझात॥[18]

विरहा पावक उर वसे, नख शिख जारे देह।
रज्जब ऊपर रहम कर, वर्षहु मोहन मेह॥[19]

विरही बालक गूंग पशु, काहि कहै दुख सुक्ख।
रज्जब मन की मन रही, लहै न मारग मुक्ख¶॥[20]

* **सकल...उमंगी**=मन से सारी मोह-माया को त्यागकर मैं तेरे संग आनंद मनाऊँगी।
† **शून्य...सर्वंगी**=ऐसा सर्वव्यापी प्रभु जिसको किसी का आधार नहीं चाहिए।
‡ **रज्जब....संगी**=तुम्हारी यह प्रेमिका धन्य है जो तुम्हारे रंग में रँग गई है। अब यह साथ सदा अमर रहेगा।
§ बिना झड़े, बरसे
¶ **लहै...मुक्ख**=बात मुख पर नहीं आती।

दशवें कुल का नाग है,* दरद सु देही माँहि।
जन रज्जब ताके डसे, मंत्र रु मूली नाँहि॥[21]

रज्जब विरह भुवंग परि, औषधि हरि दीदार।
बिन देखे दीरघ दुखी, तन मन नहीं करार॥[22]

ज्यों विरहनि वर बीछुटे, बिहर गई तहिं काल।†
त्यों रज्जब तुम कारने, विपति माँहि बेहाल॥[23]

जन रज्जब जगदीश बिन, ऋतु भली कोइ नाँहिं।
शीत उष्ण वर्षा बुरी, विरह व्यथा मन माँहिं॥[24]

जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल शृंगार।
त्यों रज्जब भूला सकल, सुन सनेह दिलदार॥[25]

विरही प्राणी चकोर है, विरहा अग्नि अँगार।
रज्जब जारे और को,‡ उनके प्राण अधार॥[26]

रज्जब ज्वाला विरह की, कबहूं प्रकटे माँहि।
तो सींचो घृत सौचसौं, कर्म काष्ट जरि जाँहि॥§[27]

एक विरह बहु भांति का, भाव भिन्न बिच होय।
रज्जब रोवे राम को, सो जन विरला कोय॥[28]

* **दशवें...है**=विरह दसवें कुल का नाग है अर्थात् नौ कुलों के नागों का इलाज है, लेकिन विरहरूपी दसवें नाग का इलाज नहीं है।
† **ज्यों...काल**=अपने प्रियतम से बिछुड़ने पर विरहिणी का हृदय उसी समय फटने लगता है।
‡ **रज्जब...को**=वह आग जो दूसरों को जलाती है।
§ **तो...जाँहि**=तो उसे वियोग के संतापरूपी घी से सींचना चाहिए, जिससे कर्मरूपी लकड़ियाँ जल जाएँ।

विरह अग्नि की हद्द है, ब्रह्म अग्नि बेहद्द।
रज्जब रोवे दिवस दश, ज्ञान अखंडित गद्द॥*[29]

दर्द नहीं दीदार का, तालिब नाँहीं जीव।
रज्जब विरह वियोग बिन, कहाँ मिले सो पीव॥[30]

दर्द बिना क्यों देखिये, दर्शन दीन दयाल।
रज्जब विरह वियोग बिन, कहां मिले सो लाल॥[31]

श्रवणों सुरति न पीव की, प्रेम न लेहि समाय।
रज्जब रुचि माँहीं नहीं, कहां मिले सो आय॥[32]

रोय धोय उज्वल किये, दृग देखन हरि हेत।
अब रज्जब को रहम करि, काहे न दर्शन देत॥[33]

ज्यों चुंबक शिल नाल जटि, अस ऊभा रह जाय।†
त्यों रज्जब मन को विरह, जे देख्या निरताय॥[34]

विरही सावित विरह में, विरह बिना मर जाइ।
ज्यों चूंने का कांकरा, रज्जब जल मिल राइ॥[35]

तन मन काष्ठ ज्यों जरहिं, हेत हुताशन‡ लागि।
रज्जब रंग भंग बंक बल, जहां विरह की आगि॥§[36]

* **रज्जब...गद्द**=विरहिणी तो कुछ दिन रोती है लेकिन परमात्मा का ज्ञान होने पर अखंडित शब्द की गर्जना तो हमेशा बनी रहती है।
† **ज्यों...जाय**=जैसे घोड़े के पैर में लगी नाल चुंबक की शिला को छूते ही उससे चिपक जाती है और चलता हुआ घोड़ा वहीं खड़ा हो जाता है।
‡ प्रेम की आग
§ **रज्जब...आगि**=जहाँ विरह की आग प्रकट हो जाती है, वहाँ विषय-भोगों का प्रेम और मन की कुटिलता का बल सब नष्ट हो जाते हैं।

शब्द सुरति परसै नहिं, तब लग बाँझी जोय।*
रज्जब परसी जानिये, जब बालक विरहा होय।[37]

विरहनि वसुधा की अगनि, ब्रह्म व्योम क्यों जाहि।
रज्जब वर वर्षा बिना, उर धर क्यों सु सिराहि॥†[38]

रज्जब अज्जब काम में, मोत लही मनसूर।
यूं अल्लह आशिक हुआ, जाहिर जगत जहूर॥[39]

* **शब्द...जोय**=जब तक सुरत शब्द का मिलाप नहीं होता, तब तक सुरत बाँझ है।
† **विरहनि...सिराहि**=विरहिणीरूपी पृथ्वी की आग परमात्मारूपी आकाश तक कैसे जा सकती है? परमात्मा की मेहररूपी वर्षा ही हृदयरूपी धरती को शांत कर सकती है।

शरणा सांई साधु का

शरणा सांई साधु का, पकड़ रही रे प्राण।
तो रज्जब लागे नहीं, जम जालिम का बाण॥[1]

गुरु दादू के दस्त में, जन रज्जब की जान।
ज्यों राखैं त्यों रहेंगे, सदक दिया सुबहान*॥[2]

गुरु आज्ञा अँगुरी बँधे, चेले चक्री होय।†
आवे जाय रजा में रज्जब, दूजा नाँहीं कोय॥[3]

ब्रह्मा विष्णु महेश के, शरणे कुशल न कोय।
तो रज्जब तेतीस तज,‡ राखण हार सु जोय॥[4]

साधु सबूरी श्वान की,§ लीजे कर सु विवेक।
वह घर बैठा एक के, तू घर-घर फिर हि अनेक॥[5]

सांचे के शरणे बचै, सूत पान दिव देत¶।
तो रज्जब सुन साध का, शरणा क्यों नहीं लेत॥[6]

प्राण सु शरणे पिंड के, पिंड सु शरणे प्राण।
शरणे का शरणे सुखी, रज्जब समझ सुजाण॥[7]

* **सदक...सुबहान**=उस प्रभु स्वरूप सतगुरु पर अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया है।
† **गुरु...होय**=शिष्यरूपी चक्री गुरु की आज्ञारूपी अँगुली में बँधी होती है।
‡ **तो...तज**=तैंतीस करोड़ देवताओं को त्यागकर।
§ **साधु...की**=हे साधुओ! कुत्ते जैसा संतोष धारण करो।
¶ **सूत...देत**=अग्नि परीक्षा के लिए हाथ पर सूत या पीपल का पत्ता रखकर, फिर उसके ऊपर आग में तपा हुआ गर्म गोला रखा जाता था। अगर हाथ जल जाए तो वह व्यक्ति झूठा सिद्ध होता था और न जलने पर सच्चा।

तकै दिशा को आसिरा, शरणा छोड़ै साध।
ताको क्या परमोधिये, मूरख बुद्धि अगाध॥[8]

रज्जब रूठा राम सौं, मिल रामत के रंग।
गुण ग्राही गोपालजी, तऊ गये नहिं भंग॥*[9]

यथा नापिगा नीर ले, सिन्धु समापत जांहिं।†
त्यों रज्जब सर्वस्व ले, सौंपै साहिब माँहिं॥[10]

अठारह भार अंधियार को,‡ देखो दीपक खाय।
सो रज्जब शरणे बिना, वायु लागि बुझ जाय॥[11]

तिहूँ काल ताकैं शरण, तन मन काचे जानि।
आश्रम बिन अंतक उदय, प्राण पिण्ड ह्वै हानि॥§[12]

अग्नि आश्रय काष्ट के, काष्ट सु शरणे आग।
जुदे होत जीवसौं गये, रहैं एकठे लाग॥¶[13]

जलनिधि में जल चर बड़े, तो सौ योजन देह।**
सो भी शरणे सलिल के, मन मत मानी येह॥[14]

---

* **रज्जब...भंग**=अगर जीव परमात्मा से रूठकर दुनिया के खेल-तमाशों में लीन हो जाए तो भी परमात्मा जो गुणों का ग्राहक है, (शरण में आए) जीव को बरबाद नहीं होने देता।

† **यथा...जांहिं**=जिस प्रकार नदियाँ अपना सारा पानी सागर को समर्पित करके अपने अस्तित्व को समाप्त कर देती हैं।

‡ **अठारह...को**=संपूर्ण अंधकार को।

§ **तिहूँ...हानि**=तीनों अवस्थाओं—बाल, युवा, वृद्ध—में तन, मन को क्षणभंगुर जानकर गुरु की शरण में रहना चाहिए। संतों की शरण के बिना काल प्राणी की बार-बार हानि करता है।

¶ **अग्नि...लाग**=जब तक अग्नि काठ के सहारे रहती है तथा काठ अग्नि के सहारे रहता है तब तक वे दोनों आराम से रहते हैं; परंतु जब अग्नि काठ से अलग होकर प्रकट हो जाती है तो दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

** **जलनिधि...देह**=समुद्र में ऐसे विशाल जीव भी हैं जिनके शरीर सौ योजन तक के हैं।

हमारे सब ही विधि करतार,
धर्म नेम अरु योग यज्ञ जप, साधन सांई सार॥
पूजा अर्चा नौधा* नामहि, शोधि कियो व्यवहार।
तीरथ वरत सु नाम तुम्हारा, और नहीं अधिकार॥
वेद पुराण भेख पख भूधर, तुझ ही शिर भर भार।†
बुधि विवेक बल ज्ञान गुसांई, और नहीं आधार॥
सकल धर्म करतूत कमाई, सब तुम ऊपर वार।
जन रज्जब के जीवन रामा, निशि दिन मंगल चार॥[15]

कब हूं देखि हूं हरि चरण,
मन कर्म वचन जाउं बलिहारी, जो पाऊं शिर धरन॥
सारंग‡ भई सकल तज सजनी, नाम रटन उर करन।
तन मन सकल करूं नौछावर, जो आवें पति घरन॥
सुरति सीप सायर सब त्यागे, नाम स्वाति ता शरन।§
जन रज्जब की विपति दूर करि, आय मिलो दुख हरन॥[16]

मरहि अमर अरि अंग मित्र दल जीव ही।¶
जामण मरण सु जांहिं परम रस पीव ही॥
यहु सब सु गुरु प्रसाद भक्ति भगवंत लौं।
परि हां रज्जब तन धन देहु लेहु जो तोहि गौं**॥[17]

---

* नवधा भक्ति

† **वेद...भार**=आप ही मेरे वेद, पुराण, भेख और सभी पक्षों का सहारा हैं। आपके सिर पर ही सभी का पूरा भार है।

‡ चातक

§ **सुरति...शरन**=जैसे सीप समुद्र के जल को त्यागकर स्वाति को ग्रहण करती है, उसी तरह मैंने भी सब कुछ त्यागकर नाम की शरण ली है।

¶ **मरहि...ही**=सतगुरु की शरण में जाने से काम-क्रोध आदि कभी न मरनेवाले शत्रु भी धीरे-धीरे मर जाते हैं और शील-संतोष आदि मित्र जी उठते हैं।

** चाहते

बाहर बैठे बहिर्मुख, गुरुमुख भीतर जाय

गुरुमुख

बाहर बैठे बहिर्मुख, गुरुमुख भीतर जाय।
रज्जब रीता क्यों पड़े, खोल खजना खाय।[1]

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकाश।
ये सांई के कहे में, त्यों रज्जब गुरु दास॥[2]

गुरु सन्मुख शिष रह सदा, कदे करो मत और।
ज्यों रज्जब वसुधा बिरछ, सुखी दुखी इक ठौर॥*[3]

ज्यों सद्गुरु के शब्द में, त्यों चल शिष्य सुजान।
जन रज्जब रहु इस मतै, छाडहु खैंचातान॥[4]

सहगुण निर्गुण गुरु गरट, गाहक शिषौं अनेक।†
रज्जब गुरु गोविन्द ले, सो चेला कोइ एक॥[5]

भांति भांति का गर्व तज, गुरु मुख होहु गरीब।
रज्जब पावै पीर को, निर्मल नेक नसीब॥[6]

---

* **ज्यों...ठौर**=वृक्ष चाहे सुखी हो या दुखी, वह ज़मीन पर उसी एक जगह टिका रहता है।

† **सहगुण...अनेक**=सगुण और निर्गुण उपासना बतानेवाले गुरुओं के तो अनेक समूह हैं, उनके उपदेश को ग्रहण करनेवाले शिष्य भी अनेक हैं।

सब संतन की राशि हरि, सोइ पुंज उर धारि।
यूं रज्जब सब सेइये, गुरुमुख ज्ञान विचारि॥[7]

सूक्ष्म सेव शरीर में, कोई गुरु मुख जाने।
मन मृतक तन पैठि करि, पति पूजा ठाने॥[8]

पहले बावन तीस जु अक्षर जानिये।*
पीछे वेद कुरान सु बोलि बखानिये॥
तैसे गुरु मुख मार्ग जु प्राणी पाय है।
परि हां रज्जब पंथी सोय शून्य पुर जाय है॥†[9]

गुरु उपदेश सरै सब कामा, आतम उपज मिलै पुनि रामा।
गुरु मुख दीवै दीवा होवै, आतम उपज मथे पुनि जोवै॥[10]

बिन घटि माल रहट की भरमे, जल आवे कुछ नाँही।‡
त्यूं रज्जब चेतन बिन चेला, रीता संगति माँही॥[11]

मनमुख

आज्ञा भंगी मन मुखी, व्यभिचारी व्रत नाश।
रज्जब रीता रती बिन, नाँहि चरण निवास॥[12]

सद्गुरु शब्द न मान ही, चलै मन मुखी भाय।
औषधि गई अहार पड़ि, व्यथा बीच मरि जाय॥§[13]

---

* **पहले...जानिये**=किसी भी ग्रंथ को पढ़ने के लिए पहले बावन वर्णों वाली संस्कृत भाषा या तीस वर्णों वाली अरबी भाषा सीखनी पड़ती है।

† **परि...है**=वही परमार्थ का पथिक परमात्मा के धाम पहुँच सकता है।

‡ **बिन...नाँही**=जैसे घड़े के बिना घूमती हुई रहट की माला के द्वारा कुछ भी जल नहीं निकलता।

§ **सद्गुर...जाय**=जो सतगुरु की आज्ञा को नहीं मानता और अपने मनमुखी स्वभाव से चलता है, वह उस रोगी के समान है जिसकी औषधि भोजन में गिर जाती है और वह उसे सही अनुपात में न लेने के कारण दर्द में ही दुखी होकर मर जाता है।

गुरु मुख मारग ना गहे, मनमुख चाल्या जाय।
रज्जब नर निवहै* नहीं, बातैं कहो बनाय॥[14]

असाध्य रोग मन ऊपजै, सो गुरु शब्द न जाय।
जन रज्जब ज्यों शंख पर, रंग न चढ़ै चढ़ाय॥[15]

आज्ञा गुरु गोविन्द की, चलै सु चेला† चार।
रज्जब रम तों मन मुखी, पग पग पूरी मार॥[16]

मकरी चकरी तार पर, अह निशि आवे जाँहिं।‡
मन मनसा ऐसे फिरहिं, कैसे पति पतियाँहिं॥[17]

मुख माने मनमें अमन,§ दिल दुविधा नहिं जाय।
रज्जब सीझे कौन विधि, इहिं व्यभिचारी भाय॥¶[18]

गुरु मुख साँची ना गहै, मन-मुख बैठी आनि।**
जन रज्जब सुलझै सु क्यों, हृदय हलाहल सानि॥[19]

आतम उर अज्ञान रत, सुने न सद्गुरु बात।
पारस पोरस क्या करे, धरती खाई धात††॥[20]

हरि सा हितू विसारि करि, मुग्ध सु भूला मींच।
रज्जब रोग असाध्य अति, क्यों नीका व्है नींच॥[21]

* पार पाना
† सेवक
‡ **मकरी...जाँहिं**=मकड़ी चक्री की तरह दिन-रात तार पर फिरती रहती है।
§ **मुख...अमन**=मुँह से तो भगवान को मानते हैं, परंतु मन से नहीं मानते।
¶ **रज्जब...भाय**=वे इस अस्थिर भाव के कारण कैसे प्रभु को मिल सकते हैं?
** **गुरु मुख...आनि**=जो गुरु के द्वारा कही गई सच्ची बात को ग्रहण नहीं करता तथा जिसके अंतर में अपने मन को अच्छी लगनेवाली बातें ही बैठी रहती हैं।
†† **धरती...धात**=भूमि में पड़े लोहे को ज़ंग ने खा लिया है।

नाम निरंजन छाडि कर, गहै कसौटी रूप।
जन रज्जब अह निशि चलै, अंत रहट बिच कूप॥*[22]

रज्जब भेरा नाम का, नर हु निबंध्या मूल।
ता बिन करहिं सु और कछु, भोंदू पड़े सु भूल॥[23]

ज्यों घोड़ा असवार वश, चलैं पराये भाय।
रज्जब अड़ अपनी गहै, तभी मार बहु खाय॥[24]

अपनी अपनी खुशी में, चलै सबै कोइ चाल।
जन रज्जब ज्यों हरि खुशी, त्यों कोइ सके न झाल॥[25]

मन माने सौदा करै, मन नाहीं तो नांहिं।
रज्जब मानैं राम जी, सो कुछ नाहीं मांहिं॥[26]

षट् दर्शन अपणी खुशी, खेलै सब संसार।
जन रज्जब रुचि राम की, बिरला खेलणहार॥[27]

मन की भावड़ि† सब चलै, चौरासी लख जीव।
तो रज्जब इस चाल में, कहो किन पाया पीव॥[28]

* **नाम...कूप**=जो नाम को छोड़कर कष्टप्रद साधनों को अपनाता है उसकी हालत कुएँ के रहट के समान है, जो दिन-रात चलकर भी कुएँ के बीच में ही रहता है।
† इच्छा में

साहिब सों यहु बीनती

साहिब सों यहु बीनती, पड़दा सकल उठाय।
तो रज्जब तुमको मिले, बल आया नहिं जाय॥[1]

भृंगी ने भृंगी करी, कीट कृत्य कछु नाँहिं।
त्यों रज्जब सौं कीजिये, क्या देखो हम माँहिं॥[2]

दास हि द्वारे राखिये, हरि हित आँख्यों हेर।
बंदे की यहु बीनती, घर घर बार न फेर॥[3]

रज्जब गुनहीं जीव जड़, अपराधी सु अपार।
महर तुम्हारी ऊबरे, सांचा सिरजनहार॥[4]

मीरां* मुझमें क्या खता, जे तुम विसरे बाप।
अब रज्जब पर रहम कर, दें अघ मोचन जाप॥[5]

हम समान गुनहीं नहीं, तुम सम बख्शनहार।
उभय अंग में फेर क्या, कीजे कृपा विचार॥[6]

तुम पूरण प्रतिपाल जी, अवगुण दिशा न देख।
रज्जब बूडे रामजी, लीजे काढि अलेख॥[7]

रोय धोय उज्वल किये, दृग देखन हरि हेत।
अब रज्जब को रहम करि, काहे न दर्शन देत॥[8]

* हे स्वामी!

नाम बिना जो और है, सो माँग्या मत देहु।
रज्जब चरणों राखिये, हरि अपना कर लेहु॥[9]

जीव कृत जगदीश कने, जाया कदे न जाय।
रज्जब जब लग रामजी, आप न करे सहाय॥[10]

रज्जब बंदे बाल विधि, बोलहिं मति उनहार।*
पै अन्तर्यामी मात पितु, मन की लेहिं विचार॥[11]

भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव।
यहु तुमरो तुमको मिले,† तुम क्यों मिलो न पीव॥[12]

तू साहिब सन्मुख सदा, बंदा विमुख कदीम‡।
तो रज्जब सौं रोस क्या, कीजे फहम फहीम॥§[13]

जत सत सुमिरन करन का, हरि दाता दे दान।
रज्जब की यहु बीनती, मुश्किल करण आसान॥[14]

मनिखा देही मौज दी, महर मिलाये साध।
अब रज्जब को दर्श दे, दीरघ दत्त अगाध॥[15]

रज्जब की अरदास यहु, और कहै कछु नाँहिं।
मो मन लीजे हेरि हरि, मिले न माया माँहिं॥[16]

* **रज्जब**...**उनहार**=तुम्हारे भक्त बालक के समान होते हैं और वे अपनी बुद्धि के अनुसार आपके आगे प्रार्थना करते हैं।
† **यहु**...**मिले**=यह तुम्हारा है और तुमसे मिलना चाहता है।
‡ **बंदा**...**कदीम**=तुम्हारा यह दास हमेशा से तुमसे विमुख रहा है।
§ **तो**...**फहीम**=क्यों मुझ पर क्रोध करते हो? तुम तो सब कुछ जानते हो, मुझे अपने से मिलने का ज्ञान बख़्शो।

चिदानन्द चित में रहो, मन मोहन मन माँहिं।
रज्जब ऊपरि रहम कर, अरि उर आवे नाँहिं॥[17]

तन मन पंचों चोर हैं, वश आवहिं नहिं बाज।
इनके गुण हनि मारिये, ए सांई शिरताज॥[18]

तन मन को धोओ घणी, मति के विविध विकार।
रज्जब की रज ऊतरे, तुम तैं सिरजनहार॥[19]

मन की चाही मत करो, सुन आतम अरदास।
सब तुम को मालूम है, जो है जाके पास॥[20]

तन मन को दीजे सजा, रहै रजा में नाँहिं।
रज्जब रोके कौन विधि, आप आपको जाँहिं॥[21]

जे तुम राखो तो रहै, सांई सुनहु सुजान।
आतम आभे में रहै, मनवा बीज समान॥*[22]

पंच भूत मन दैत्य का, धक्का टाल दयाल।
रज्जब ऊपर रहम कर, राख लेहु रछपाल॥[23]

आवण जाणाँ किसी न भावे, परि साहिब को कहि को समझावे।
अर्ज दीन की सुनिये सांई, जीव जगत में फेरो नाँहीं॥[24]

बिनती सुनिये सकल शिरताज।
सब की आदि सकल प्रतिपालक, सदा गरीब निवाज॥
यहु अरदास पास प्रभु राखो, सारो सेवक काज।
आतम राम हिं कौन मिलावै, काहि कहैं तुम बाज॥

---

* **आतम...समान**=(रज्जब विनती करते हैं कि) जैसे बिजली आकाश में रहती है, उसी तरह मेरा मन भी आत्मा के साथ रहे यानी आत्मा के कहे अनुसार चले।

यहु अंतर मेटो इहिं अवसर, अन्तर्यामी आज।
बारंबार बहुरि नहिं लहिये, नर नारायण साज॥
त्राहि त्राहि कहिये किहिं आगे, पुत्र दुखी पितु राज।
रज्जब रुदन करत करुणामय, बहो विरुद की लाज*॥[25]

जैसे मनषा देह दी, त्यों प्रभु दे दीदार।
यहु रज्जब की बीनती, कीजे फेर न सार॥[26]

रज्जब रोग सु ना कटे, बिन दारू दीदार।
मुख दिखलाओ महर कर, ज्यों जीव होय करार॥[27]

मनिषा देही देत ही, पय पर आणी सार†।
अब दाव भाव करि नाम दे, रज्जब उतरे पार॥[28]

गुरु का कह्या करावहु सांई, ये बातैं मेरे मन भाई॥
गुरु की आज्ञा में मन राखो, दीन दयालु दूर मत नाखो‡॥
गुरु की सीख सन्मुखा कीजे, समर्थ साहिब यहु दत दीजे॥
गुरु का ज्ञान चलावहु मोसौं, यहु अरदास करूं प्रभु तो सौं॥
गुरु की गति मति मांहीं मारी, रज्जब मांगे भीख भिखारी॥§[29]

राम राय राखि लेहु जन तेरा, कोइ नाहिं बुद्धि बल मेरा।
मन मैमंत फिरे माया संग, घर आवे नहिं घेरा॥
पंच प्रचंड प्राण महि पैठे, घर ही में घर घेरा।
निशि दिन निमष होत नहिं न्यारे, देय रहे दिल डेरा॥

---

* **बहो...लाज**=अपने यश की लाज रखिए।
† **पय...सार**=माँ के दूध से पालन-पोषण किया।
‡ फेंको
§ **गुरु...भिखारी**=रज्जब यही भीख माँगता है कि आख़िरी साँस तक गुरु की दिखाई राह पर चलता रहूँ।

बाहर विघ्न बहुत विधि बैठे, प्रकीरति बिच पेरा।*
सुनहुं पुकार सुरति करि सांई, दुख दीरघ बहुतेरा॥
ये सब मार महर सौं भागे, तब जाय होय निबेरा।
आन उपाय वोत नहिं जिव को, जन रज्जब सब हेरा॥†30

* **बाहर...पेरा**=मैं अनेक प्रकार के सांसारिक जंजालों में घिरा बैठा हूँ और अंदर मन की वृत्ति के कारण पिस रहा हूँ।

† **आन...हेरा**=रज्जब ने सब उपाय करके देख लिए हैं, जीव को किसी भी तरह शांति नहीं मिल सकती।